भारतीय नारी

स्वामी विवेकानन्द

(एकादश संस्करण)



रामकृष्ण मठ
नागपुर

प्रकाशक—
स्वामी व्योमरूपानन्द,
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ
धन्तोली, नागपुर ४४००१२

अनुवादक—
श्री इन्द्रदेवसिंह आर्य
एम्. एस्सी ; एल्.एल्. बी.

श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृतिग्रन्थमाला
पुष्पसंख्या २७

[व ८४ : प्र ६०]

मुद्रक—
नाझ ऑफसेट-वर्क्स
८७२, गली मदरसे वाली
दिल्ली—११० ००६

मूल्य रु. ४·००

वक्तव्य

"भारतीय नारी' का यह एकादश संस्करण है।

नर-नारायण के एकनिष्ठ सेवक स्वामी विवेकानन्दजी के निर्मल चित्त में अतीत, वर्तमान तथा भावी समाज का जो चित्र प्रतिफलित हुआ था, उसका एक ऐसा सनातन रूप है, जो काल के विपर्यय से म्लान नहीं होता। नारीसमाज के सम्बन्ध में उनकी उक्तियाँ आज भी इसीलिए समभाव से उज्ज्वल तथा समाज-जीवन के लिए उपयुक्त हैं कि वे थे 'आमूल-सुधारक'। सदा परिवर्तनशील समाज की क्षणिक तृप्ति के लिए उन्होंने संस्कार के कृत्रिम प्रस्रवण की रचना कर प्रशंसा अर्जन नहीं की; वे चाहते थे समाज की जीवनशक्ति को प्रबुद्ध करना, जिससे उसके हृदय के आनन्द की शतधारा स्वतः ही उच्छ्वसित हो सके।

आंग्ल भाषा में प्रकाशित स्वामी विवेकानन्दजी के ग्रन्थोद्यान से उन्हीं चिर-नूतन भावपुष्पों का चयन रामकृष्ण मिशन के स्वामी रंगनाथानन्दजी ने किया है। उन्होंने स्वामी विवेकानन्दजी के भारतीय नारी सम्बन्धी मौलिक विचारों का संग्रह 'Our Women' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है। प्रस्तुत पुस्तक उसी अंगरेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। इसमें स्वामी विवेकानन्द कृत 'Women of India' नामक पुस्तक का लगभग पूरा अनुवाद भी जोड़ दिया गया है। इसके अतिरिक्त और भी कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों का समावेश किया गया है।

हमें आशा है कि इस प्रकाशन से हिन्दी जनता का कई दृष्टिकोणों से लाभ होगा।

नागपुर,
४-१२-८४

—प्रकाशक

अनुक्रमणिका



भारतीय नारी



भारतीय स्त्री का आदर्श

"भारत ! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियो का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती है, मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शकर है, मत भूलना कि तुम्हारा विवाह, तुम्हारा धन और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय-सुख के लिए—अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नही है, मत भूलना कि तुम जन्म से ही 'माता' के लिए बलिस्वरूप रखे गये हो, मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट् महामाया की छाया मात्र है।"

प्रत्येक भारतवासी भगवान् श्रीरामचन्द्र और माता सीताजी के जीवन को आदर्श मानता है। प्रत्येक बालिका सीताजी के भव्य आदर्श की आराधना करती है। भारतवर्ष की प्रत्येक स्त्री की यह आकाक्षा है कि वह अपने जीवन को भगवती सीता के समान पवित्र, भक्तिपूर्ण और सर्वसह बनाये। सीताजी और भगवान् श्रीरामचन्द्र के चरित्रो के अध्ययन से भारतीय आदर्श का पूर्ण ज्ञान हो सकता है। जीवन के पाश्चात्य और भारतीय आदर्शो मे भारी अन्तर है। सीताजी का चरित्र हमारी जाति के लिए सहनशीलता का आदर्श है। पाश्चात्य सस्कृति कहती है कि तुम यन्त्रवत् कार्य मे लगे रहो और अपनी शक्ति का परिचय कुछ भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त करके दिखाओ। भारतीय आदर्श, इसके विपरीत, कहता है कि तुम्हारी महानता दुःखो को सहन करने की शक्ति मे है। पाश्चात्य आदर्श अधिक से अधिक धन-सम्पत्ति के

सग्रह मे गर्व करता है, भारतीय आदर्श हमे अपनी आवश्यकताओं को न्यून से न्यून कर जीवन को सरलतापूर्वक व्यतीत करना सिखाता है। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम के आदर्शो मे दो ध्रुवों का अन्तर है। माता सीता भारतीय आदर्श की प्रतीक है।

कई लोग प्रश्न करते हैं कि क्या सीता और राम की कथा में कोई ऐतिहासिक तथ्य है, क्या वास्तव में सीता नाम की किसी स्त्री ने विश्व मे जन्म लिया था ? हमे इस वाद-विवाद मे पड़ने की कोई आवश्यकता नही। हमारे लिए तो इतना ही जानना पर्याप्त है कि सीताजी का आदर्श मानव मात्र के लिए परम उज्ज्वल रूप में दीप्तिमान हो रहा है। आज सीताजी के आदर्श के सदृश ऐसी कोई अन्य पौराणिक कथा नही है, जिसे समस्त राष्ट्र ने इतना आत्मसात् कर लिया हो, जो उसके जीवन के साथ इतनी एकाकार हो गयी हो और उसके जातीय रक्त मे इस प्रकार घुल-मिल गयी हो। भारत में माता सीता का नाम पवित्रता, साधुता और विशुद्ध जीवन का प्रतीक है; वह स्त्री के अखिल गुणो का जीवित जाग्रत् आदर्श है।

भारत मे कोई गुरु अथवा सन्त जब किसी स्त्री को आशीर्वाद देते है, तो कहते है, 'तुम सीताजी के समान बनो'; और जब वे किसी बालिका को आशीर्वाद देते है, तब भी यही कहते है कि सीताजी का अनुकरण करो। क्या स्त्रियाँ, क्या बालिकाएँ सभी भगवती सीता की सन्तान हैं, और वे सब माता सीता के समान धीर, चिरपवित्र, सर्वसह और सतीत्वमय जीवन बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

भगवती सीताजी को पद-पद पर यातनाएँ और कष्ट प्राप्त होते है, परन्तु उनके श्रीमुख से भगवान् रामचन्द्र के प्रति एक भी

कठोर शब्द नही निकलता। सब विपत्तियों और कष्टों का वे कर्तव्य-बुद्धि से स्वागत करती है और उसे भलीभाँति निभाती हैं। उन्हें भयंकर अन्यायपूर्वक वन मे निर्वासित कर दिया जाता है, परन्तु उसके कारण उनके हृदय मे कटुता का लवलेश भी नही। यही सच्चा भारतीय आदर्श है।

भगवान् बुद्ध ने कहा, "जब तुम्हे कोई चोट पहुँचाता है और तुम प्रतिशोध मे उसे चोट पहुंचाते हो, तो इस प्रकार प्रथम अपराध का निवारण तो नही होता, अपितु वह ससार मे केवल दुष्टता की वृद्धि का कारण बन जाता है।" सीताजी भारतीय स्वभाव की यथार्थ प्रतीक थी, उन्हे पहुँचायी गयी चोट या कष्ट के प्रत्युत्तर मे उन्होंने किसी दूसरे को कष्ट नही दिया।

यदि हम विश्व के भूतकालीन साहित्य को खोजे और भविष्य मे होनेवाले साहित्य का भी मन्थन करने के लिए तैयार रहे, तो भी हमे सीताजी के समान भव्य आदर्श कही प्राप्त नही होगा। सीताजी का चरित्र अद्भुतरम्य है। सीताजी के जीवनचरित्र का उद्भव विश्व-इतिहास की वह घटना है, जिसकी पुनरावृत्ति असम्भव है। यह सम्भव है कि विश्व मे अनेक राम का जन्म हो, परन्तु दूसरी सीता कल्पनातीत है। सीताजी भारतीय नारीत्व की उज्ज्वल प्रतीक है। पूर्ण-विकसित नारीत्व के सभी भारतीय आदर्शों का मूल प्रस्रवण वही एकमात्र सीता-चरित्र है। आज सहस्रो वर्ष के उपरान्त भी भगवती सीता काश्मीर से कन्याकुमारी तक और कच्छ से कामरूप तक, क्या पुरुष, क्या स्त्री और क्या बालक-बालिका, सभी की आराध्यदेवी बनी हुई है। पवित्रता से भी अधिक पवित्र, धैर्य और सहनशीलता की साक्षात् प्रतिमा रामदयिता सीता सदा-सर्वदा इस महान् पद पर आसीन रहेगी।

माता सीता, जिन्होंने विश्व की महान् से महान् विपत्तियों और दारुण दुःखों को तनिक भी आह का उच्चारण किये विना सहा; वे सीताजी, जिन्होंने चिरपवित्र सतीधर्म का आदर्श उपस्थित किया; वे सीताजी, जो मानव और देवता सभी की श्रद्धा और भक्ति का स्थान है, चिरकाल तक भारत की आराध्य-देवी वनी रहेंगी। सीताजी के जीवन से प्रत्येक भारतीय इतना परिचित है कि अधिक विस्तार मे जाने की आवश्यकता प्रतीत नही होती।

चाहे हमारा सारा पुराण-साहित्य लुप्त हो जाय, सस्कृत भाषा और वेद भी सदा के लिए नष्ट हो जायँ, फिर भी जव तक जगली से जगली भाषा बोलनेवाले पॉच हिन्दू विद्यमान है, तव तक सीताजी का गुणगान होता रहेगा। वास्तव मे सीताजी इस राष्ट्र का प्राण हैं। प्रत्येक हिन्दू स्त्री और पुरुष के रक्त मे सीताजी का आदर्श विद्यमान है, हम सव उसी माता की सन्तान है। यदि हम भारतीय स्त्रियो को आधुनिक रूप देने के उद्देश्य से उन्हे सीता के आदर्श से वचित करने का प्रयत्न करे तो—जैसा कि हम प्रतिदिन देखते है—हमारा यह प्रयत्न उसी क्षण विफल सिद्ध होगा। आर्यावर्त की स्त्रियों का विकास और उन्नति तभी सम्भव है, जव वे सीताजी के पद-चिह्नो पर चले—'नान्यः पन्था'।

हर एक भारतकन्या की यह आकाक्षा है कि वह सावित्री के समान वने, जिसके प्रेम ने मृत्यु पर भी विजय पा ली, जिसने अपने सर्वविजयी प्रेम द्वारा मृत्युदेवता यम के पाश से भी अपने हृदयेश की आत्मा का छुटकारा करवा लिया।

अश्वपति नामक एक राजा थे। उनकी कन्या इतनी सुन्दर और सुशील थी कि उसका नाम ही सावित्री पड़ गया—सावित्री

जो कि हिन्दुओं के एक अति पावन स्तोत्र का नाम है। युवती होने पर, सावित्री के पिता ने उसे अपना पति निर्वाचित करने के लिए कहा। प्राचीन भारतीय राजकुमारियाँ अत्यन्त स्वतन्त्र थी और अपना भावी जीवन-साथी स्वय चुनती थी।

सावित्री ने पिता की आज्ञा स्वीकार कर ली और वह एक स्वर्णखचित रथ पर आरूढ हो, पिता द्वारा साथ दिये गये अनुचरों और वृद्ध मन्त्रियो सहित, विभिन्न राज-दरबारो मे जा-जा कई राजकुमारो से भेट करती रही, किन्तु उनमे से कोई भी उसका हृदय आकर्षित न कर सका। अन्त मे वे लोग तपोवन-स्थित एक पवित्र मुनि-कुटीर में आये।

द्युमत्सेन नामक एक नृपति को वृद्धावस्था मे शत्रुओ ने पराजित कर, उसका राजपाट छीन लिया था। बेचारा राजा इस अवस्था मे अपनी आँखे भी खो बैठा। निराश और असहाय हो, इस वृद्ध अन्ध राजा ने अपनी रानी और पुत्र को साथ ले जंगल की शरण ली और कठोर व्रतोपवास मे अपना जीवन विताने लगा। उसके पुत्र का नाम सत्यवान था।

दैवयोग से सावित्री सारी राजसभाओ मे जाने के बाद इसी तपोवन मे आ गयी। सावित्री ने कुटी मे आकर राजतपस्वी सत्यवान के दर्शन किये और मन ही मन उसे अपना हृदयेश बनाने का सकल्प कर लिया। राजसभाओ और राजप्रासादो के निवासी राजकुमार जिस सावित्री का मन मोहित न कर सके, उसी का हृदय आज वनवासी द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान ने चुरा लिया।

सावित्री पितृगृह लौटे आयी। पिता ने पूछा "वत्से, क्या कोई राजकुमार दिखा, जिससे तुम विवाह करना चाहोगी ?" लज्जा से रक्तकपोल हो सावित्री विनयपूर्वक बोली "हाँ पिताजी।"

" तो उस राजकुमार का नाम क्या है ?" " वे युवराज नही हे, राजा द्युमत्सेन के पुत्र है, जो अपना राज्य खो चुके हैं। वे एक राजपुत्र हैं, जो राज्य-विहीन है, और आश्रम में कन्द-मूल-फल संग्रह कर, वनवासी मातापिता के साथ संन्यासियो का जीवन व्यतीत करते है।"

दैवयोग से महर्षि नारद भी उस समय वहाँ उपस्थित थे। राजा ने उनकी सलाह ली। महर्षि ने वतलाया की यह निर्वाचन अत्यन्त अशुभ और अनिष्टकारक होगा। राजा ने महर्षि से इसका कारण बताने का अनुरोध किया।

महर्षि नारद बोले, " राजन्, आज से एक साल मे सत्यवान कालकवलित हो जायगा।" राजा इस अनिष्ट की आशका से भयग्रस्त हो सावित्री से वोले, "वेटी, सत्यवान का एक वर्ष मे ही देहावसान हो जायगा और तुम्हे वैधव्य की दारुण यातनाएँ सहनी पडेगी। जरा विचार करो पुत्री ! और अपना निश्चय त्याग दो। इस प्रकार के अल्पायु और आसन्नमृत्यु वर से तुम्हारा विवाह किसी हालत मे न होगा।" सावित्री ने उत्तर दिया, "कोई चिन्ता नही, पिताजी ! आप मुझसे किसी अन्य पुरुप के साथ विवाह-वद्ध हो अपना मानसिक पावित्र्य नष्ट करने का आग्रह न कीजिये। मैं साहसी और धर्मपरायण सत्यवान को प्रेम करती हूँ और उन्हें अपने मन-ही-मन वरण कर चुकी हूँ। आर्यकन्याओ का विवाह जीवन मे एक ही बार होता है और वे कभी संकल्प-च्युत नही होती।" जब राजा अश्वपति ने देखा कि सावित्री अपने निश्चय पर अटल है, तो उन्हे बाध्य होकर सहमत होना पडा। सावित्री और सत्यवान विवाह-ग्रन्थि मे वँध गये। तदनन्तर सावित्री अपने पति के साथ रहने और सास-श्वशुर कि सेवा करने राजमहल

को छोड वन मे चली गयी ।

सावित्री को अपने पति की मृत्यु की तिथि ज्ञात थी, पर उसने कभी भी उससे इसकी चर्चा न की । प्रतिदिन सत्यवान गहन अरण्य में प्रवेश कर, फल-मूल संग्रह करता, ईंधन के लिए लकड़ी के बोझ बाँधता और कुटी पर लौट आता; वह भी भोजन बनाती और वृद्ध दम्पति की सेवा मे रत रहती । इस प्रकार उनकी जीवन-धारा शान्त गति से बहती रही, और धीरे धीरे वह दुर्दिन समीप आ गया । जब केवल तीन ही दिन शेष रहे, तो सावित्री ने तीन रात्रियों का कठोर व्रतोपवास धारण कर लिया और वह निमिष-मात्र भी नही सोयी । रात-भर उसकी आँखो मे नीद न थी, उसका हृदय रो रहा था और आर्तस्वर मे वह प्रभु की आराधना करती रही । अन्त मे, उस भयकारक दिवस का प्रभात आ ही पहुँचा । उस दिन एक क्षण भी सावित्री ने सत्यवान को अपनी आँखों से ओट नही होने दिया । जब वह ईंधन लाने बाहर जाने लगा, तो वह भी मातापिता से अनुमति की याचना कर उसके साथ-साथ गयी । अचानक लड़खडाते स्वर मे सत्यवान ने मूच्छित होते हुए कहा, "प्रिये, मुझे चक्कर आ रहा है, मेरी ज्ञानेन्द्रियाँ अवसन्न हो रही है, मेरी सारी देह निद्राभिभूत हो रही है. मुझे अपने समीप थोड़ासा आराम करने दो ।" भयाक्रान्त हो कम्पित स्वर मे सावित्री बोली, "मेरे जीवन-धन, अपना सिर मेरी गोद मे रखकर विश्राम कीजिये ।" सत्यवान ने अपना ताप-तप्त सिर अपनी पत्नी की गोद मे रखा, और एक दीर्घ श्वास लेते ही उसके प्राणपखेरू उड़ गये । सावित्री ने उसके शव को हृदय से लगा लिया और अश्रुपूर्ण नयनो से वह उस निर्जन वन मे अकेली बैठी रही ।

अब यमदूत सत्यवान की आत्मा को ले जाने वहाँ आये, पर वे उस स्थान पर नहीं जा सके, जहाँ सावित्री अपने मृत पति को गोद में लिये विलाप कर रही थी। उसके चारों ओर एक अग्नि-वृत्त-सा था, जिसे पार करने की उनमें क्षमता नहीं थी। वे सब वहाँ से भाग खड़े हुए और मृत्युराज यम से सत्यवान की आत्मा लाने में असमर्थ होने का कारण बताने लगे।

तब मृतात्माओं के न्यायकर्ता, स्वयं मृत्युराज यम उस स्थल पर आये। भारतीयों का विश्वास है कि यम 'आदि-मृतक' अर्थात् इस पृथ्वी पर मृत्यु-प्राप्त सर्वप्रथम व्यक्ति है। वे ही सब मर्त्य प्राणियों के अधिपति-पद पर आसीन है। वे इस बात पर विचार करते है कि मरणोत्तर जीवन मे किस व्यक्ति को क्या दण्ड और पारितोषिक दिया जाय। यम देवता है इसलिए वे सरलतापूर्वक उस अग्निचक्र के भीतर प्रवेश कर गये। सावित्री के समीप आ, वे बोले, "पुत्री, इस मृत देह को छोड दो। तुम तो जानती ही हो, सभी प्राणी मरणशील है। मैं स्वयं आदि-मृतक हूँ और तब से सभी प्राणियों को काल-कवलित होना पड़ता है। मानव के लिए मृत्यु ही विधि-विधान है।"

यह सुनकर सावित्री कुछ दूर हट गयी और यमराज सत्यवान की आत्मा लेकर अपने लोक की ओर जाने लगे। वे थोड़ी ही दूर गये थे कि उन्हें शुष्क पर्ण-राशि पर किसी की चरण-ध्वनि सुनायी दी। पीछे घूमकर उन्होंने देखा—सावित्री उनके पीछे आ रही थी। उन्होंने कहा, "पुत्री, तुम क्यो व्यर्थ मेरे पीछे-पीछे आ रही हो? सभी देहधारियों को देहत्याग करना पड़ता है, मृत्यु ही मानव की नियति है।" सावित्री बोली, "पिताजी, मैं आपका अनुसरण कहाँ कर रही हूँ? यह तो नारी का अदृष्ट ही है कि

जिस ओर उसका प्रिय पति जायगा, वह भी उसी ओर अनुगमन करेगी; और यह सनातन नियम है कि पतिव्रता स्त्री और पत्नीव्रत पति मे कभी वियोग नही होता।" तव मृत्युदेवता प्रसन्न हो वोले, " पुत्री, अपने पति के जीवन के अतिरिक्त मुझसे कोई भी वर माँग लो।" सावित्री ने कहा, " यदि आपकी इतनी कृपा है, तो हे मृत्युदेव, मेरे श्वशुर दृष्टिलाभ पा सुखी रहे।" "तथास्तु, पुत्री" कहकर यमराज सत्यवान की आत्मा लिये मार्ग-क्रमण करने लगे। उन्हे फिर पीछे वैसी ही पद-ध्वनि सुनायी दी। पीछे घूमकर वे वोले, " पुत्री, तुम अव भी मेरा पीछा कर रही हो!" " हाँ पितृवर", सावित्री वोली, " मै वरवस पीछे-पीछे खिची चली आ रही हूँ। मै अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर लौट जाने का प्रयत्न कर रही हूँ, किन्तु मेरा मन मेरे पति के पीछे जा रहा है और शरीर उसका अनुसरण कर रहा है। मेरी आत्मा तो पहले ही चली गयी है क्योकि मेरे स्वामी की आत्मा मे मेरी भी आत्मा अवस्थित है; और जहाँ आत्मा जायगी, वही शरीर भी जायगा--यही नियति है।" इस पर यम बोले, " सावित्री, मैं तुम्हारी वाणी से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। अपने स्वामी का जीवनदान छोड़कर तुम पुन. एक वर माँगो।" सावित्री वोली, " पिताजी, यदि आप प्रसन्न है, तो मेरे श्वशुर को अपना हारा हुआ राज्य वापस मिल जाय।" यम वोले, "वत्से, यह वर भी मै तुम्हे देता हूँ--और अव तुम घर लौट जाओ; क्योकि देहधारी यमराज के साथ नही चल सकते।" यम फिर चलने लगे, किन्तु शीलवती और पतिपरायणा सावित्री ने अव भी अपने मृत पति के पीछे चलना नही छोड़ा। यम ने फिर पीछे फिरकर उससे कहा, "हे मनस्विनी, हे सावित्री, इस प्रकार शोकाकुल हो पीछे-पीछे मत आओ।"

सावित्री बोली, "मैं विवश हूँ। जिधर आप मेरे हृदयधन को ले जायेंगे, उस ओर जाने के सिवाय मेरे पास कोई चारा ही नहीं।" "तब सावित्री, यदि तेरा पति पापात्मा रहता और नरकगामी होता, तो क्या तू भी उसके साथ नरकवास करती?" सावित्री बोली, "नरक हो या स्वर्ग, मृत्यु हो या जीवन--जहाँ मेरे स्वामी रहेंगे, वहाँ जाने मे मुझे प्रसन्नता ही होगी।" यम बोले, "वत्से, तुम्हारी वचनावली अत्यन्त मनोहर और धर्मसंगत है। मैं तुम्हारे शब्दों से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे एक वर और माँग लो; किन्तु ध्यान रखो, मृत को जीवन-दान नहीं मिला करता।" "यदि प्रभु की अनुमति है, तो मुझे वर दें कि मेरे श्वसुर का वंश नष्ट न होने पाये और इस राज्य पर सत्यवान का उत्तराधिकार सत्यवान के पुत्रों को प्राप्त हो।"

यमराज मुस्कुराये और बोले, "पुत्री, तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी। यह लो सत्यवान की आत्मा। मैं उसे पुनर्जीवन प्रदान करता हूँ। सत्यवान के और तुम्हारे पुत्र ही राज्य-शासन करेंगे। अब घर लौट जाओ। आज प्रेम ने मृत्यु पर विजय पा ली है। नारीरत्न, तुम्हारा प्रेम अप्रतिम है और तुमने यह सिद्ध कर दिया कि मैं---मृत्युदेवता---भी शुद्ध, अपरिवर्तनशील प्रेम की शक्ति के सामने निर्बल हूँ।"

स्त्रियों की शिक्षा

"हम चाहते हैं कि भारत की स्त्रियो को ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे वे निर्भय होकर भारत के प्रति अपने कर्तव्य को भलीभाँति निभा सके और सघमित्रा, लीला, अहिल्यावाई और मीरावाई आदि भारत की महान् देवियो द्वारा चलायी गयी परम्परा को आगे वढा सकें एव वीरप्रसू वन सकें। भारत की स्त्रियाँ पवित्रता व त्याग की मूर्ति हैं, क्योकि उनके पास वह वल और शक्ति है, जो सर्वशक्तिमान परमात्मा के चरणो मे सम्पूर्ण आत्मसमर्पण से प्राप्त होती है।...मेरा तो दृढ विश्वास है कि धर्म ही शिक्षा का मेरुदण्ड है।"

शिष्य—आजकल स्त्रियो को किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है ?

स्वामीजी—धर्म, शिल्प, विज्ञान, गृहकार्य, स्वास्थ्य, रन्धन, सीना-पिरोना आदि सव विपयों का स्थूल मर्म सिखलाना उचित है। नाटक और उपन्यास तो उनके पास तक पहुँचने ही न चाहिए। 'महाकाली पाठशाला' कई वातों मे ठीक पथ पर चल रही है, किन्तु केवल पूजा-पद्धति सिखलाने से ही काम न वनेगा। सव विषयो मे उनकी आँखे खोल देना उचित है। छात्राओ के सामने आदर्श नारी-चरित्र सर्वदा रखकर त्यागरूप व्रत में उनका अनुराग उत्पन्न करना होगा। सीता, सावित्री, दमयन्ती, लीलावती, खना मीराबाई आदि के जीवनचरित्र कुमारियों को समझाकर, उन्हें अपने जीवन को इसी प्रकार गढ़ने का उपदेश देना होगा।

किन्तु स्मरण रहे कि सर्वसाधारण मे और स्त्रियो मे शिक्षा का प्रसार हुए विना उन्नति का कोई उपाय नही है। इसलिए कुछ

ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियाँ बनाने की मेरी इच्छा है। ब्रह्मचारीगण समय पर संन्यास लेकर देश-देश गाँव-गाँव जायेंगे तथा सर्वसाधारण में शिक्षा का प्रसार करने का प्रबन्ध करेंगे, और ब्रह्मचारिणियाँ स्त्रियों मे विद्या का प्रसार करेंगी। परन्तु यह सब काम अपने ही देश के ढंग पर होना चाहिए। पुरुषो के लिए जैसा शिक्षा-केन्द्र बनाना होगा, वैसा ही स्त्रियों के निमित्त भी करना होगा। शिक्षित और सच्चरित्र ब्रह्मचारिणियाँ इस केन्द्र में कुमारियों को शिक्षा दिया करेंगी। पुराण, इतिहास, गृहकार्य, शिल्प, गृहस्थो के सारे नियम इत्यादि की शिक्षा वर्तमान विज्ञान की सहायता से देनी होगी तथा आदर्श चरित्र गठन करने के लिए उपयुक्त तत्त्वो की भी शिक्षा देनी होगी। कुमारियों को धर्मपरायण और नीतिपरायण बनाना होगा। जिससे वे भविष्य में अच्छी गृहिणी हों, वही करना होगा। इन कन्याओं से जो सन्तान उत्पन्न होगी, वह इन विषयों मे और भी उन्नति कर सकेगी। जहाँ माता शिक्षित और नीतिपरायण है, वहीं बड़े लोग जन्म लेते है। वर्तमान समय में तो स्त्रियो को काम करने का यन्त्र-सा बना रखा है। राम! राम!! तुम्हारी शिक्षा का क्या यही फल हुआ ? सर्वसाधारण को जगाना होगा; तभी तो भारत का कल्याण होगा।

मेरे जीवन की यही महत्त्वाकाक्षा है कि इस प्रकार के साधन निर्माण किये जायँ, जिनसे भारत के घर-घर मे उच्च और महान् आदर्श पहुँच सकें। उसके उपरान्त स्त्री-पुरुष स्वतः अपने भविष्य का निर्माण कर सकते है। प्रत्येक भारतीय को यह ज्ञान रहे कि जीवन के महान् प्रश्नों पर उसके पूर्वजो और दूसरे राष्ट्रों के विद्वानों के क्या विचार है। विशेषतः उसे इस बात का ज्ञान हो कि आज संसार

क्या कर रहा है, और फिर वह अपने कार्य की दिशा ठीक करे।

शिष्य––महाराज, भारतवर्ष के इतिहास मे बहुत प्राचीन काल से भी स्त्रियो के लिए तो किसी मठ की वात नही मिलती। वौद्ध-युग मे स्त्री-मठो की बात सुनी जाती है। परन्तु उसके परिणाम-स्वरूप अनेक प्रकार के व्यभिचार होने लगे थे। घोर वामाचार से देश भर गया था।

स्वामीजी––इस देश मे स्त्री और पुरुष में इतना अन्तर क्यो समझा जाता है, यह समझना कठिन है। वेदान्त-शास्त्र मे तो कहा हैं; एक ही चित्-सत्ता सर्व भूतो मे विद्यमान है। तुम लोग स्त्रियों की निन्दा ही करते हो, परन्तु उनकी उन्नति के लिए तुमने क्या किया वताओ तो ? स्मृति आदि लिखकर, नियम-नीति में आवद्ध करके इस देश के पुरुषो ने स्त्रियो को एकदम वच्चा पैदा करने की मशीन वना डाला है। जगदम्वा की साक्षात् मूर्ति इन स्त्रियों का उत्थान न होने से क्या तुम लोगो की उन्नति सम्भव है ?

शिष्य––महाराज, स्त्री-जाति साक्षात् माया की मूर्ति है। मनुष्य के अधःपतन के लिए ही मानो उसकी सृष्टि हुई है। स्त्री-जाति ही माया के द्वारा मनुष्य के ज्ञान-वैराग्य को आवृत कर देती है। सम्भव है, इसीलिए शास्त्रो ने इगित किया है कि उनके लिए ज्ञान-भक्ति का लाभ करना अत्यन्त कठिन है।

स्वामीजी––किस शास्त्र मे ऐसी बात है कि स्त्रियाँ ज्ञान-भक्ति की अधिकारिणी नही हो सकती ? भारत के अवनति-काल मे जव ब्राह्मण-पण्डितों ने ब्राह्मणेतर जातियो को वेदपाठ का अनधिकारी घोषित किया, तो साथ ही उन्होंने स्त्रियों के भी सभी अधिकार छीन लिये। नही तो वैदिक युग मे, उपनिषद्-युग मे, तू देख, मैत्रेयी, गार्गी आदि प्रातःस्मरणीय स्त्रियाँ ब्रह्मविचार मे ऋषितुल्य

हो गयी थी। सहस्र वेदज्ञ ब्राह्मणों की सभा मे गार्गी ने गर्व के साथ याज्ञवल्क्य को ब्रह्मज्ञान के शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया था। इन सब आदर्श विदुपी स्त्रियों को जब उस समय अध्यात्म-ज्ञान का अधिकार था, तब फिर आज भी स्त्रियों को वह अधिकार क्यों न रहेगा ? एक बार जो हुआ है, वह पुनः अवश्य हो सकता है। इतिहास की पुनरावृत्ति हुआ करती है। सभी जातियाँ स्त्रियों की पूजा करके बड़ी बनी है। जिस देश, जिस जाति मे स्त्रियो की पूजा नही होती, वह देश, वह जाति कभी बड़ी नही बनी और न कभी बन ही सकेगी। तुम्हारी जाति का जो इतना अध:पतन हुआ है, उसका प्रधान कारण है इन सब शक्ति-मूर्तियों का अपमान करना। मनु महाराज ने कहा है, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया: ॥'* जहाँ पर स्त्रियों का सम्मान नहीं होता, जहाँ वे दु.खी रहती है उस परिवार की, उस देश की उन्नति की आशा कभी नही की जा सकती। इसलिए पहले इन्हें उठाना होगा। इनके लिए आदर्श मठ की स्थापना करनी होगी।

शिष्य—महाराज, प्रथम बार विलायत से लौटकर आपने स्टार थिएटर में भाषण देते हुए तन्त्र की कितनी निन्दा की थी ! अब तन्त्रों द्वारा समर्थित स्त्री-पूजा का समर्थन कर आप अपनी ही बात बदल रहे हैं।

स्वामीजी—तन्त्रों के वामाचार मत का जो विकृत वर्तमान रूप है, उसी की मैंने निन्दा की थी। तन्त्रोक्त मातृभाव की अथवा यथार्थ वामाचार की मैंने निन्दा नहीं की। भगवती मानकर स्त्रियों की पूजा करना ही तन्त्र का उद्देश्य है। बौद्धधर्म के अध.पतन के

* मनुस्मृति, ३–५६

समय वामाचार घोर दूषित हो गया था। वही दूषित भाव आजकल के वामाचार मे विद्यमान है। अभी भी भारत के तन्त्रशास्त्र उसी भाव द्वारा प्रभावित है। उन सव वीभत्स प्रथाओं की ही मैनें निन्दा की थी—और अभी भी करता हूँ। जिस महामाया का रूपरसात्मक बाह्य विकास मनुष्य को पागल वनाये रखता है, जिस महामाया का ज्ञान-भक्ति-विवेक-वैराग्यात्मक अन्तर्विकास मनुष्य को सर्वज्ञ, सिद्धसकल्प, ब्रह्मज्ञ वना देता है, उस महामाया की प्रत्यक्ष मूर्ति इन स्त्रियो का पूजा करने का निषेध मैंने कभी नही किया। 'सैपा प्रसन्ना वरदा नृणा भवति मुक्तये'—इस महामाया को पूजा, प्रणाम द्वारा प्रसन्न न कर सकने पर क्या मजाल है कि ब्रह्मा, विष्णु तक उसके पंजे से छूटकर मुक्त हो जायँ ? गृहलक्ष्मियों की पूजा के उद्देश्य से, उनमें ब्रह्मविद्या के विकास के निमित्त, उनके लिए मठ वनवाकर जाऊँगा।

शिष्य—हो सकता है कि आपका यह संकल्प अच्छा है; परन्तु स्त्रियाँ कहाँ से मिलेंगी ! समाज के कड़े वन्धन के रहते कौन कुलवधुओ को स्त्रीमठ मे जाने की अनुमति देगा ?

स्वामीजी—क्यो रे ! अभी भी श्रीरामकृष्ण की कितनी ही भक्तिमती लड़कियाँ हैं। उनसे स्त्रीमठ का प्रारम्भ करके जाऊँगा। श्रीमाताजी* उनका केन्द्र वनेगी। श्रीरामकृष्णदेव के भक्तो की स्त्री-कन्याएँ आदि उसमे पहले-पहल निवास करेगी, क्योंकि वे इस प्रकार के स्त्रीमठ की उपकारिता आसानी से समझ सकेगी। उसके वाद उन्हें देखकर अन्य गृहस्थ लोग भी इस महत्कार्य के सहायक वनेंगे।

शिष्य—श्रीरामकृष्ण के भक्तगण इस कार्य मे अवश्य ही

* भगवान श्रीरामकृष्णदेव को लीलासहधर्मिणी।

सम्मिलित होंगे; परन्तु साधारण लोग भी इस कार्य में सहायक होंगे, ऐसा तो प्रतीत नही होता।

स्वामीजी—जगत् का कोई भी महान् कार्य त्याग के विना नही हुआ है। वटवृक्ष का अकुर देखकर कौन समझ सकता है कि समय आने पर वह एक विराट् वृक्ष वनेगा? अभी तो इसी रूप मे मठ की स्थापना करूँगा। फिर देखना, एकाध पीढी के वाद दूसरे सभी देशवासी इस मठ की कद्र करने लगेगे। ये जो विदेशी स्त्रियाँ मेरी शिष्या वनी है, ये ही इस कार्य मे जीवन उत्सर्ग करेगी। तुम लोग भय और कापुरुषता छोड़कर इस महान् कार्य मे लग जाओ और इस उच्च आदर्श को सभी के सामने रखो। देखना, समय पर इसकी प्रभा से देश उज्ज्वल हो उठेगा।

शिष्य—महाराज, स्त्रियो के लिए आप किस प्रकार का मठ वनाना चाहते है? कृपया विस्तार के साथ मुझे वतलाइये। मैं सुनने के लिए विशेष उत्कण्ठित हूँ।

स्वामीजी—गंगाजी के उस पार एक विस्तृत भूमिखण्ड लिया जायगा। उसमें अविवाहित वालिकाएँ रहेगी तथा विधवा ब्रह्मचारिणियाँ भी रहेगी। साथ ही गृहस्थ घर की भक्तिमती स्त्रियाँ भी बीच बीच में आकर ठहर सकेंगी। इस मठ से पुरुषो का किसी प्रकार का सम्बन्ध न रहेगा। पुरुषमठ के वृद्ध साधुगण दूर से स्त्रीमठ का काम चलायेगे। स्त्रीमठ मे लड़कियों का एक स्कूल रहेगा। उसमें धर्मशास्त्र, साहित्य, सस्कृत व्याकरण और साथ ही थोड़ी-वहुत अँगरेजी भी सिखायी जायगी। सिलाई का काम, रसोई वनाना, घर-गृहस्थी के सभी नियम तथा शिशुपालन के सामान्य विषयों की भी शिक्षा दी जायगी। साथ ही जप, ध्यान, पूजा ये सव तो शिक्षा के अंग रहेंगे ही। जो स्त्रियाँ घर

छोड़कर हमेशा के लिए वहाँ रह सकेंगी, उनके भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध मठ की ओर से किया जायगा। जो ऐसा नही कर सकेंगी, वे इस मठ में दैनिक छात्राओं के रूप में आकर अध्ययन करेंगी। यदि सम्भव होगा, तो मठ के अध्यक्ष की अनुमति से वे यहाँ पर रहेंगी और जितने दिन रहेंगी, भोजन भी पा सकेंगी। स्त्रियों से ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए वृद्धा ब्रह्मचारिणियाँ छात्राओं की शिक्षा का भार लेंगी। इस मठ मे ५-७ वर्ष तक शिक्षा प्राप्त कर लड़कियों के अभिभावकगण उनका विवाह कर दे सकेंगे। यदि कोई अधिकारिणी समझी जायगी, तो अपने अभिभावकों की सम्मति लेकर वह यहाँ पर चिरकौमार्य-व्रत का पालन करती हुई ठहर सकेंगी। जो स्त्रियाँ चिरकौमार्य-व्रत का अवलम्बन करेंगी, वे ही समय पर इस मठ की शिक्षिकाएँ तथा प्रचारिकाएँ बन जायँगी और गाँवगाँव, नगरनगर में शिक्षाकेन्द्र खोलकर स्त्रियों की शिक्षा के विस्तार की चेष्टा करेंगी। चरित्रशील, धार्मिक-भावसम्पन्न उस प्रकार की प्रचा-रिकाओं के द्वारा देश में यथार्थ स्त्रीशिक्षा का प्रसार होगा। वे स्त्रीमठ के सम्पर्क मे जितने दिन रहेंगी, उतने दिन तक ब्रह्मचर्य की रक्षा करना इस मठ का अनिवार्य नियम होगा।

धर्म-परायणता, त्याग और संयम यहाँ की छात्राओं के अलं-कार होंगे और सेवाधर्म उनके जीवन का व्रत होगा। इस प्रकार का आदर्श जीवन देखने पर कौन उनका सम्मान न करेगा और कौन उन पर अविश्वास करेगा? देश की स्त्रियों का इस प्रकार जीवन गठित हो जाने पर तभी तो तुम्हारे देश में सीता, सावित्री, गार्गी का फिर से आविर्भाव हो सकेगा! देशाचार के घोर बन्धन से प्राणहीन, स्पन्दनहीन बनकर तुम्हारी लड़कियाँ कितनी

दयनीय बन गयी हैं, यह तू एक वार पाश्चात्य देशों की यात्रा कर लेने पर ही समझ सकेगा। स्त्रियों की इस दुर्दशा के लिए तुम्हीं लोग जिम्मेदार हो। देश की स्त्रियों को फिर से जागृत करने का भार भी तुम्ही पर है। इसीलिए तो मैं कह रहा हूँ कि बस काम में लग जा। क्या होगा व्यर्थ मे केवल कुछ वेद-वेदान्तादि को रटकर?

शिष्य---महाराज, यहाँ पर शिक्षा प्राप्त करने के वाद भी यदि लडकियाँ विवाह कर लेंगी, तो फिर उनमें लोग आदर्श जीवन कैसे देख सकेंगे? क्या यह नियम अच्छा न होगा कि जो छात्राएँ इस मठ मे शिक्षा प्राप्त करेगी, वे फिर विवाह न कर सकेंगी?

स्वामीजी---ऐसा क्या एकदम ही होता है रे? शिक्षा देकर छोड़ देना होगा। उसके पश्चात् वे स्वयं ही सोच-समझकर जो उचित होगा करेंगी। विवाह करके गृहस्थी में लग जाने पर भी वैसी लड़कियाँ अपने पति को उच्च भाव की प्रेरणा देंगी और वीर पुत्रों की जननी बनेंगी। परन्तु यह नियम रखना होगा कि स्त्रीमठ की छात्राओं के अभिभावकगण पन्द्रह वर्ष की अवस्था के पूर्व उनके विवाह का नाम न लेगे।

शिष्य---महाराज, फिर तो समाज उन सब लड़कियों की निन्दा करने लगेगा। उनसे कोई भी विवाह करना न चाहेगा।

स्वामीजी---क्यों नहीं? तू समाज की गति को अभी तक समझ नही सका है। इन सब विदुषी और कुशल लड़कियो को वरों की कमी न होगी। 'दशमे कन्यकाप्राप्ति' इन सब वचनों पर आजकल समाज नही चल रहा है---चलेगा भी नही। अभी भी देख नही रहा है?

शिष्य---आप चाहे जो कहें, परन्तु पहले-पहल इसके विरुद्ध

एक प्रबल आन्दोलन अवश्य रहेगा।

स्वामीजी—आन्दोलन का क्या भय है? सात्त्विक साहस से किये गये सत्कर्म में बाधा होने पर कार्य करनेवालों की शक्ति और भी जाग उठेगी। जिसमे बाधा नही है—विरोध नहीं है, वह मनुष्य को मृत्यु के पथ में ले जाता है। संघर्ष ही जीवन का चिह्न है, समझा?

शिष्य—जी हाँ।

स्वामीजी—परब्रह्म-तत्त्व में लिंग-भेद नही है। हमे 'मैं तुम' की भूमि में ही लिंग-भेद दिखायी देता है। मन जितना ही अन्तर्मुख होता जाता है, उतना ही वह भेद-ज्ञान लुप्त होता जाता है। अन्त मे जब मन एकरस ब्रह्मतत्त्व मे डूब जाता है, तब यह स्त्री, वह पुरुष—ऐसा भेद-ज्ञान बिलकुल नही रह जाता। हमने श्रीरामकृष्ण में यह भाव प्रत्यक्ष देखा है। इसलिए मैं कहता हूँ कि स्त्री-पुरुषो में बाह्य भेद रहने पर भी स्वरूप मे कोई भेद नही है। अतः यदि पुरुष ब्रह्मज्ञ बन सके, तो स्त्रियाँ ब्रह्मज्ञ क्यों नहीं बन सकेगी? इसीलिए कह रहा था, स्त्रियो में समय आने पर यदि एक भी ब्रह्मज्ञ बन सकी, तो उसकी प्रतिभा से हजारों स्त्रियाँ जाग उठेगी और देश तथा समाज का बहुत कल्याण होगा, समझा?

शिष्य—महाराज, आपके उपदेश से आज मेरी आँखें खुल गयी हैं।

स्वामीजी—अभी क्या खुली है? जब सब कुछ उद्भासित करनेवाले आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष करेगा, तब देखेगा, यह स्त्री-पुरुष के भेद का ज्ञान एकदम लुप्त हो जायगा; तभी स्त्रियाँ ब्रह्मरूपिणी ज्ञात होंगी। श्रीरामकृष्ण को देखा है—सभी

स्त्रियों के प्रति मातृभाव—फिर वह चाहे किसी भी जाति की कैसी भी स्त्री क्यो न हो। मैंने देखा है न ! इसीलिए मैं इतना समझाकर तुम लोगों को वैसा बनने के लिए कहता हूँ और लड़कियों के लिए गाँव गाँव में पाठशालाएँ खोलकर उन्हें शिक्षित बनाने के लिए कहता हूँ। स्त्रियाँ जब शिक्षित होंगी, तभी तो उनकी सन्तान द्वारा देश का मुख उज्ज्वल होगा और देश में विद्या, ज्ञान, शक्ति, भक्ति जाग उठेगी।

शिष्य—परन्तु महाराज, मैं जहाँ तक समझता हूँ, आधुनिक शिक्षा का विपरीत ही फल हो रहा है। लडकियाँ थोड़ा-बहुत पढ़ लेती है और बस कमीज-गाऊन पहनना सीख जाती है; ब्रह्मविद्या प्राप्त करने योग्य त्याग, संयम, तपस्या, ब्रह्मचर्य आदि विषयों मे क्या उन्नति हो रही है, यह समझ मे नहीं आता।

स्वामीजी—पहले-पहल उस प्रकार कुछ भूले हुआ ही करती है। देश मे नये भाव का पहले-पहल प्रचार होने के समय कुछ लोग उस भाव को ठीक ग्रहण नही कर सकते। पर इससे विराट् समाज का कुछ नही बिगड़ता। फिर भी जिन लोगो ने आधुनिक साधारण स्त्रीशिक्षा के लिए भी प्रारम्भ में उद्योग किया था, उनकी महानता मे सन्देह क्या है ? असल बात यह है कि शिक्षा अथवा दीक्षा—धर्महीन होने पर उसमे त्रुटि रह ही जाती है। अब धर्म को केन्द्र बनाकर स्त्रीशिक्षा का प्रचार करना होगा। धर्म के अतिरिक्त दूसरी शिक्षाएँ गौण रहेंगी। धर्मशिक्षा, चरित्रगठन तथा ब्रह्मचर्य-पालन—इन्ही के लिए तो शिक्षा की आवश्यकता है। वर्तमान काल मे आज तक भारत में स्त्रीशिक्षा का जो प्रचार हुआ है, उसमे धर्म को

ही गौण बनाकर रखा गया है। तूने जिन सब दोषों का उल्लेख किया, वे इसी कारण उत्पन्न हुए हैं। परन्तु इसमें स्त्रियों का क्या दोष है बता ? सुधारकगण स्वयं ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन न करते हुए स्त्रीशिक्षा देने के लिए अग्रसर हुए थे, इसीलिए उसमें इस प्रकार की त्रुटियाँ रह गयी हैं। सभी सत्कार्यों के प्रवर्तकों को अभीप्सित कार्य के अनुष्ठान के पूर्व, कठोर तपस्या की सहायता से स्वयं आत्मज्ञ हो जाना चाहिए, नहीं तो उसके काम में गलतियाँ निकलेंगी ही। समझा ?

शिष्य—जी हाँ। देखा जाता है, अनेक शिक्षित लड़कियाँ केवल नाटक-उपन्यास पढ़कर ही समय बिताया करती हैं; परन्तु पूर्वबंग में लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त करके भी नाना व्रतों का अनुष्ठान करती हैं। इस भाग में भी क्या वैसा ही करती हैं ?

स्वामीजी—भले-बुरे लोग तो सभी देशों तथा सभी जातियों में हैं। हमारा काम है—अपने जीवन में अच्छे काम करके लोगों के सामने उदाहरण रखना। तिरस्कार और निन्दा से कोई काम सफल नहीं होता। इससे तो लोग और भी दूर होते जाते हैं। लोग जो चाहे कहें, विरुद्ध तर्क करके किसी को हराने की चेष्टा न करना। इस माया के जगत् में जो कुछ भी किया जाय, उसमें दोष रहेगा ही—'सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः'—आग रहने से ही धुआँ उठेगा। परन्तु क्या इसीलिए निश्चेष्ट होकर बैठे रहना चाहिए ? नहीं, शक्ति भर सत्कार्य करते ही रहना होगा।

* * *

"सर्वप्रथम स्त्रीजाति को सुशिक्षित बनाओ, फिर वे स्वयं कहेंगी कि उन्हें किन सुधारों की आवश्यकता है। तुम्हें उनके

प्रत्येक कार्य में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार है ?"

"उन्नति के लिए सब से पहले स्वाधीनता की आवश्यकता है। यदि तुम लोगों में से कोई यह कहने का साहस करे कि मैं अमुक स्त्री अथवा अमुक लड़के की मुक्ति के लिए काम करूँगा, तो यह अत्यन्त अन्याय और भूल होगी। मुझसे बारम्बार पूछा जाता है कि विधवाओं की और सारी स्त्रीजाति की उन्नति के उपाय के सम्बन्ध में आप क्या सोचते है ? मै इस प्रश्न का अन्तिम उत्तर देता हूँ––क्या मैं विधवा हूँ, जो तुम ऐसा निरर्थक प्रश्न मुझसे पूछते हो ? क्या मैं स्त्री हूँ, जो तुम बार बार मुझसे यही प्रश्न पूछते हो ? स्त्रीजाति के प्रश्न को हल करने के लिए आगे बढ़नेवाले तुम हो कौन ? क्या तुम हरएक विधवा और हरएक स्त्री के भाग्य-विधाता साक्षात् भगवान हो ? अलग हो जाओ। अपनी समस्याओं की पूर्ति वे स्वयं कर लेंगी।"

विवाह के सम्बन्ध में कुछ विचार

" पावित्र्य और सतीत्व तो भारतीय नारी की वह बहुमूल्य निधि है, जो उसे अतीत काल से परम्परा से प्राप्त हुई है। इसीलिए स्वभावतः वह उसे समझती है। सर्वप्रथम, हमे उनमें इस आदर्श के प्रति प्रगाढ श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न करनी चाहिए। यदि वे इस आदर्श पर दृढ़ हो गयी, तो इसके फल-स्वरूप उनका चरित्र इतना बलवान और दृढ होगा कि उसके प्रभाव से वे अपने प्राणो की आहुति देकर भी अपने पावित्र्य एव सतीत्व की रक्षा करना अपना धर्म समझेगी—चाहे वे विवाहित हो अथवा अविवाहित रहने का ध्रुव-सकल्प धारण किये हो।"

प्रश्नकर्ता—स्वामीजी, कृपा कर बालविवाह के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट कीजिये।

स्वामीजी—बगाल के शिक्षित समाज में लड़कों की बाल्यावस्था में विवाह की प्रथा धीरे धीरे उठती जा रही है। इसी प्रकार कन्याओ के विवाह की आयु में भी पहले की अपेक्षा दो-एक वर्ष की वृद्धि हो गयी है; परन्तु इसमे आर्थिक कारणो का ही विशेष प्रभाव दिखायी देता है। कारण जो कुछ भी रहा हो अब कन्याओं के विवाह के वय मे और भी वृद्धि होने की आवश्यकता है। परन्तु कन्या का बेचारा पिता भी भला क्या करेगा? ज्यो ही बालिका कुछ बड़ी हुई कि उसकी माता, सगे-सम्बन्धी और पडोसी तक उनके पिता से अनुरोध करना आरम्भ कर देते है कि कन्या के लिए शीघ्र वर ढूंढ़े, और जब तक वह बेचारा उनकी इस आज्ञा का पालन नही करता, उसे चैन नही मिलती!

हमारी धर्म-नौका के कर्णधार धर्मध्वजी दम्भियों के सम्बन्ध में जितना कम कहा जाय, उतना ही अच्छा। यद्यपि आज उनकी कोई सुनना नहीं चाहता, फिर भी वे अपनी ढपली बजाते ही जाते हैं और समाज का नेतृत्व प्राप्त करने का यत्न करते हैं। जब सरकार ने कानून (Age of Consent Bill) द्वारा किसी पुरुष के लिए बारह वर्ष से छोटी कन्या के साथ सहवास करना दण्डनीय ठहराया, तब इन पोंगा-पन्थियो ने बड़ा कोलाहल मचाया कि धर्म भ्रष्ट हो गया, कलियुग आ गया, आदि आदि। किसी बालिका पर बारह या तेरह वर्ष की आयु मे मातृत्व का भार डालना ही मानो धर्म है! अतः शासक भी स्वभावतः सोचते हैं, "वाह! इनका भी क्या धर्म है! और ये ही व्यक्ति राज-नीति के आन्दोलन मचाते हैं, राजनीतिक अधिकारों की माँग करते है!"

प्रश्नकर्ता--तो क्या आपके विचार से स्त्री और पुरुष दोनो का विवाह अधिक आयु में होना चाहिए?

स्वामीजी--अवश्य। परन्तु साथ ही साथ उन्हें उचित शिक्षा भी देनी चाहिए, अन्यथा अनाचार फैलने की सम्भावना है। शिक्षा से मेरा तात्पर्य कन्याओं को आजकल दी जानेवाली शिक्षा से नही, वरन् सच्ची रचनात्मक (Positive) शिक्षा से है। केवल पुस्तकी विद्या से कुछ भला नही हो सकता। हमे तो वह शिक्षा चाहिए, जिससे मनुष्य का चरित्र निर्माण होता है, उसके मानसिक बल की वृद्धि होकर उसका बौद्धिक विकास होता है और उसे अपने पैरों खड़े होने की शक्ति प्राप्त होती है।

प्रश्नकर्ता--प्रतीत होता है, हमें अपनी महिलाओं मे अनेक प्रकार के सुधारों की आवश्यकता है।

स्वामीजी—उपर्युक्त प्रकार से स्त्रियों की शिक्षा होने पर स्त्रियाँ अपनी समस्याओं को स्वयं सुलझा लेंगी। आज तक तो उन्हे दासता एवं परवशता की ही शिक्षा मिलती रही है, जिसका परिणाम यह हुआ कि छोटीसी भी आपत्ति अथवा दुर्घटना के आने पर वे अश्रुपात के अलावा और कुछ नहीं कर सकती। शिक्षा के अन्य अगों के साथ स्त्रियों में साहस और वीरता का प्रादुर्भाव होना चाहिए। आज की परिस्थिति मे यह अनिवार्य हो गया है कि वे आत्मरक्षा की शिक्षा प्राप्त करें। क्या आपको झाँसी की रानी की वीरता विदित नही है?

प्रश्नकर्ता—आपके बताये हुए मार्ग से तो भारतीय नारी के जीवन मे एक अभिनव परिवर्तन एव क्रान्ति का सूत्रपात होगा। परन्तु मुझे भय है कि उन्हें इस प्रकार शिक्षित बनाने के लिए बहुत समय लगेगा।

स्वामीजी—जो भी हो, हमे इस कार्य मे अपनी पूर्ण शक्ति से सलग्न हो जाना चाहिए। हमें न केवल स्त्रियों को ही विद्या-विभूषिता बनाना है, परन्तु स्वयं हमे भी अनेक बातों की शिक्षा प्राप्त करनी है। सन्तानों को केवल उत्पन्न करने से ही पिता का कर्तव्य पूर्ण नहीं हो जाता; प्रत्युत उसके कन्धों पर महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व आ पड़ता है।

अब हम स्त्रीशिक्षा के आरम्भ करने के सम्बन्ध में कुछ विचार करेंगे। पावित्र्य और सतीत्व तो भारतीय नारी की वह बहुमूल्य निधि है, जो उसे अतीत काल से प्राप्त हुई है। इसीलिए सम्भवतः वह उसे समझती है। सर्वप्रथम, हमें उनमें इस आदर्श के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न करनी चाहिए। यदि वे इस आदर्श पर दृढ़ हो गयीं, तो इसके फलस्वरूप उनका

चरित्र इतना बलवान और दृढ़ होगा कि उसके प्रभाव से वे अपने प्राणों की आहुति देकर भी अपने पावित्र्य एवं सतीत्व की रक्षा करना अपना धर्म समझेंगी--चाहे वे विवाहित हो अथवा अविवाहित रहने का ध्रुव-संकल्प धारण किये हो। क्या एक उच्च आदर्श के लिए--फिर वह आदर्श चाहे कुछ भी हो--अपने जीवन की बाजी लगा देना अत्यन्त वीरतापूर्ण कार्य नही है ? युग की आवश्यकताओं को देखते हुए यह भी अत्यावश्यक है कि उनमें से कुछ को त्याग एवं बलिदान के आदर्शों की शिक्षा दी जाय, जिससे वे आजन्म कौमार्य का पुनीत व्रत धारण करें, और पावित्र्य एवं सतीत्व की उन उदात्त भावनाओ से अनुप्राणित हों, जो अति प्राचीन काल से भारतीय नारी के जीवन की सर्वोच्च निधि रही हैं। साथ ही उन्हें भिन्न भिन्न प्रकार के उपयोगी विज्ञानों की और गार्हस्थ्य जीवन मे दिनोदिन काम आनेवाले सभी विषयों की शिक्षा भी दी जानी चाहिए, जिससे न केवल उनका हित होगा, वरन् वे दूसरो की भी सहायता एवं उपकार कर सकेंगी। मुझे विश्वास है कि अपनी और दूसरों की भलाई करने की भावना से वे इन सब विषयो को बड़े आनन्द से सीखेगी। हमारी मातृभूमि के कल्याण के लिए आज आवश्यक है कि उसके कुछ पुत्र और पुत्रियाँ पवित्र ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर आजीवन देशसेवा का प्रण ले और अपनी सारी शक्ति मातृभूमि की सेवा में अर्पण कर दें।

प्रश्नकर्ता--ब्रह्मचर्य धारण करने से स्त्रियों का क्या हित होगा ?

स्वामीजी--उनके प्रत्यक्ष उदाहरण से एवं राष्ट्रीय आदर्श का पालन करने के उनके उदात्त प्रयत्नों को देखकर लोगों के

विचारों एवं आकांक्षाओ में महती क्रान्ति उपस्थित होगी । आज, क्या दशा है ? माता-पिता येन-केन-प्रकारेण कन्या को आठ या दस वर्ष की आयु मे किसी के गले बाँधकर अपने उत्तरदायित्व से छूटना चाहते हैं ! यदि उसे तेरह वर्ष की आयु मे ही सन्तान उत्पन्न हो जाय, तो परिवार मे आनन्द का सागर उमड़ पड़ता है ! यदि हम इस विचारधारा के प्रवाह को परिवर्तित कर सके, तो जनता में पुनः उस पुरातन श्रद्धा के जागृत होने की कुछ आशा है । यदि कुछ नवयुवक और नवयुवतियाँ उपर्युक्त रीति से ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करे, तो सोचने की बात है, उनमें कितना आत्मविश्वास एवं श्रद्धा होगी, और वे देश का कितना हित-साधन कर सकेंगे !

यह सब सुनकर प्रश्नकर्ता का हृदय प्रसन्नता एवं सन्तोष से भरा न समाता था । वे स्वामीजी को प्रणाम कर बिदा माँगने लगे । स्वामीजी ने उनसे बीच बीच में आते रहने के लिए कहा । इसे सहर्ष स्वीकार करते हुए उन्होने उत्तर दिया, "आज के वार्तालाप से मेरा बड़ा कल्याण हुआ । मैने आज उन अनेक अभिनव विषयो का ज्ञान प्राप्त किया, जो अन्यत्र कभी सुने भी न थे । मै अवश्य आया करूँगा ।"

* * *

अब हम बालविवाह के कुछ अन्य पहलुओ पर विचार करेगे । इस समस्या के दूसरे पहलू के पक्ष मे यह कहा जा सकता है कि बालविवाह से असामयिक सन्तानोत्पत्ति होती है और अल्पायु मे सन्तान-धारण करने के कारण हमारी स्त्रियाँ अल्पायु होती है, उनकी दुर्बल और रोगी सन्तान देश में भिखारियों की संख्या बढाने का कारण बनती है; क्योकि यदि माता-पिता बलवान

और स्वस्थ न हों, तो उनकी सन्तान कैसे स्वस्थ और शक्तिशाली होगी ? यदि हमारे यहाँ कन्याओं के विवाह कुछ अधिक आयु में हों और उनका लालनपालन सुसंस्कृत वातावरण मे हो, तो वे ऐसी सन्तानों को जन्म देंगी जिनसे देश का यथार्थ कल्याण हो सकेगा। आज घर घर इतनी अधिक विधवाएँ पायी जाने का मूल कारण बालविवाह ही है। यदि बालविवाहों की संख्या घट जाय, तो विधवाओं की संख्या भी स्वयमेव घट जायगी।

सृष्टि में सर्वत्र भले और बुरे का सम्मिश्रण अनिवार्य रूप से पाया जाता है। मेरे विचार से प्रत्येक देश मे समाज अपनी गठन अपनी अन्तर्गत प्रेरणा के अनुसार ही कर लेता है। अतएव हमें बालविवाह-निराकरण, विधवाविवाह आदि सुधारों के सम्बन्ध मे अभी माथापच्ची नही करना चाहिए। इस सम्बन्ध में हमारा कर्तव्य यह है कि हम समाज के प्रत्येक घटक को, वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, शिक्षित और सुसंस्कृत बनायें। जनता के इस प्रकार शिक्षित हो जाने पर, वह स्वयं अपने हानि-लाभ को विचार कर इस प्रकार की कुरीतियों को निकाल बाहर करेगी। तब दबाव से किसी बात को समाज पर लादने की आवश्यकता नहीं रह जायगी।

एक ओर नवीन भारत कह रहा है, "हमें पति या पत्नी के चुनाव मे पूर्ण स्वतन्त्रता चाहिए; क्योंकि विवाह पर ही हमारे भावी जीवन का सुखमय अथवा दुःखमय होना निर्भर है। अतः इस विषय में विवाहेच्छु नवयुवक और नवयुवतियों को अपने लिए वधू या वर के चुनाव का पूरा पूरा अधिकार होना चाहिए।" दूसरी ओर, प्राचीन भारत का आदेश है, "विवाह इन्द्रियसुख के निमित्त नहीं किन्तु मानववंश को आगे चलाने के लिए है। विवाह का भारतीय आदर्श यही है। सन्तान उत्पन्न करने पर

तुम्हारे ऊपर समाज के भावी हित वा अनहित का उत्तरदायित्व आ पडता है। अतः समाज को यह निश्चित करने का अधिकार है कि तुम किसके साथ परिणय करोगे और किसके साथ नही। समाज मे उसी प्रकार के विवाह का प्रसार होता है, जिससे समाज का अधिक से अधिक कल्याण साधित हो सके; अतएव तुम्हे समाज और देश के कल्याण-साधन के निमित्त अपने व्यक्तिगत आनन्द और सुख की आहुति देने को सदा तत्पर रहना चाहिए।"

उदाहरण के लिए, अपने देश में विधवाविवाह-निषेध की बात लो। यह न समझो कि इस सम्बन्ध मे नियमों को ऋषियों अथवा कुछ दुष्ट व्यक्तियो ने प्रचलित किया है। यह मानते हुए कि पुरुष स्त्री को सर्वदा अपने अधीन रखना चाहता है, हम इससे इनकार नही कर सकते कि यदि समय के अनुसार समाज की माँग न होती, तो वे ऐसे नियमो को जारी करने मे कभी सफल न हो सकते। इस प्रकार की प्रथा के सम्बन्ध मे दो बाते ध्यान देने योग्य है:—

(१) विधवाविवाह निम्न श्रेणी के लोगो मे प्रचलित है।

(२) उच्च वर्णों मे साधारणतः पुरुपो की अपेक्षा स्त्रियों की सख्या अधिक है।

ऐसी दशा मे, यदि प्रत्येक कन्या का विवाह करना हो, तो प्रत्येक के लिए पति प्राप्त करना असम्भव-सा ही है। फिर एक ही स्त्री को एक के बाद दूसरा, इस प्रकार अनेक पति कैसे मिल सकते है? इसलिए समाज ने यह नियम कर दिया है कि जो स्त्री एक बार पति प्राप्त कर चुकी हो उसे दूसरी बार प्राप्त करने का अधिकार नही होगा, क्योकि यदि वह ऐसा करे, तो

एक अन्य कुमारी को बिना पति के ही रहना होगा। इसके विपरीत, विधवाविवाह उन अनेक जातियो मे प्रचलित है, जिनमें स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषो की संख्या अधिक है, क्योंकि ऐसे समाज मे उपर्युक्त कठिनाई नहीं उठती। धीरे धीरे पाश्चात्य देशो में भी अब अविवाहित लड़कियों को पति प्राप्त करना कठिन होता जा रहा है।

परन्तु आप यह अच्छी तरह से समझ लें कि हमारी विवाह-संस्था के पीछे जो भाव है, केवल वे ही हमे यथार्थ जीवन-यापन करने मे सहायता प्रदान कर सकते है--उन्ही से यथार्थ सभ्यता का प्रसार हो उकता है। इसके अतिरिक्त उन्नति का अन्य कोई मार्ग नहीं। यदि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को वर-वधू चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी जाय और उसे अपने वैयक्तिक सुख एव पाशविक वासनाओं की तृप्ति के लिए समाज में मनमानी करने दिया जाय, तो इसका परिणाम बड़ा भयानक होगा, और ऐसे विवाह से जो सन्तान उत्पन्न होगी, वह भी दुष्ट और राक्षसी वृत्ति की होगी। आज संसार के प्रत्येक देश मे एक और मनुष्य इस प्रकार की पाशविक सन्तान उत्पन्न कर रहा है, और दूसरी ओर इन पशुसम मनुष्यों पर शासन करने के लिए पुलिस की सख्या को दिन पर दिन वढ़ाता जा रहा है! हमारा उद्देश्य उस प्रकार से दुष्टता पर शासन करना नही, अपितु दुष्टता के प्रादुर्भाव को ही रोकना है। अत: जब तक कोई मनुष्य समाज मे रहता है, उसके विवाह का परिणाम समाज के प्रत्येक व्यक्ति पर होता है, और इसलिए समाज का यह स्वाभाविक अधिकार है कि वह आदेश दे कि तुम अमुक से विवाह करो तथा अमुक से नहीं। इस देश मे विवाह-प्रथा के पीछे इस प्रकार के ऊँचे आदर्श रहे हैं; और ये वर-वधू

के ज्योतिष-निर्णीत सम्बन्ध के नाम से प्रसिद्ध हैं। मनु का कथन है कि जो सन्तान केवल पाशविक इच्छाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होती है, वह आर्य नही। आर्य वही है, जिसका गर्भ में आगमन एवं जिसकी मृत्यु वैदिक विधियों के अनुसार होती है। यह एक कटु सत्य है कि आज इस प्रकार की आर्य सन्तान की संख्या संसार के सभी देशो मे न्यून होती जा रही हैं, और इसके फलस्वरूप संसार में उस अनाचार और दुष्ट कर्म की वृद्धि हो रही है, जिसके कारण इस युग को कलियुग कहा जाता है।

भारत मे भी हम इन प्राचीन वैदिक आदर्शों के अनुकूल आचरण नही कर रहे है। यह सत्य है कि आज की परिस्थिति मे इन समस्त आदर्शों का पूर्णतः आचरण करना सम्भव नहीं, तथा यह भी विलकुल सत्य है कि हम इनमें से कई उच्च आदर्शों की विड़म्बना ही कर रहे है। यह दुःख के साथ कहना पड़ता है कि न तो आज पूर्वकाल के समान उच्च आचरणवाले माता-पिता ही रह गये है, न समाज ही पूर्ववत् शिक्षित है और न समाज का ही व्यक्ति के प्रति अब वह सम्मान तथा प्रेम रह गया है, जो पहले देखा जाता था। परन्तु आज की जीवनप्रणाली कितनी ही दूषित क्यों न हो, उसका आधारभूत सिद्धान्त विलकुल मजबूत बना हुआ है। यदि आज यह प्रणाली दूषित हो गयी है, तो हमें चाहिए कि उसके मूलभूत सिद्धान्त को लेकर किसी दूसरी अधिक अच्छी प्रणाली का निर्माण करे। मूलभूत सिद्धान्त का नाश क्यों करे ? मूलभूत सिद्धान्त तो शाश्वत है और उसे विद्यमान रहना ही चाहिए। हमारा कर्तव्य है कि उसमें देश-काल के अनुसार उचित परिवर्तन कर उसे पुनः नये ढंग से आचरण में लाने का प्रयत्न करें।

भारतीय और पाश्चात्य स्त्रियाँ

"मैंने पृथ्वी के दोनो गोलार्धो का पर्यटन किया है। मेरा तो दृढ विश्वास है कि जिस जाति ने सीता को उत्पन्न किया—सम्भव है, यह कल्पना मात्र ही हो—उस जाति ने स्त्री-जाति के प्रति इतना अधिक सम्मान एव श्रद्धा है कि उसकी तुलना विश्व के अन्य किसी भाग से नही हो सकती।"

मैं समझता हूँ, प्रत्येक राष्ट्र का यह प्रधान कर्तव्य है कि वह मातृ-शक्ति के प्रति सम्मान के भाव का सम्पोपण करे! इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वैवाहिक वन्धन की धार्मिक पवित्रता एव उसकी अच्छेद्यता मे दृढ़ विश्वास होना अत्यावश्यक है। इसी साधन से देश पूर्ण पावित्र्य के आदर्श को प्राप्त कर सकता है। रोमन कैथलिक और हिन्दू धर्मावलम्बियों मे विवाह की पवित्रता एवं अच्छेद्यता में विश्वास के कारण ही, इन धर्मो ने प्रचण्ड शक्तिशाली अनेक ब्रह्मचारियों और सती देवियो को जन्म दिया है। एक अरब देशवासी की दृष्टि मे विवाह एक सौदा अथवा बल-प्रयोग से प्राप्त सम्पत्ति है जिसका विसर्जन इच्छानुसार किया जा सकता है और इसलिए उनके देश में कुमारीत्व एवं ब्रह्मचर्य की भावना का सर्वथा अभाव है। इसके विपरीत, आधुनिक बौद्ध धर्म मे संन्यासाश्रम का एक खिलवाड़ ही वन गया है, क्योकि उसका ऐसी अनेक जातियों में प्रचार हुआ, जिनमें अभी तक विवाह-संस्था का विकास ही नही हुआ है।

यह सर्वविदित ही है कि जीवन की महिमा पावित्र्य मे ही प्रतिष्ठित है। अतः अत्यन्त गम्भीर विचार के पश्चात् मै इस



स्वामी विवेकानंद

निर्णय पर पहुँचा हूँ कि विश्व मे आजीवन पवित्र एवं संयत जीवन व्यतीत करनेवाले कुछ शक्तिमान पुरुषों के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि जनसाधारण मे वैवाहिक बन्धन की धार्मिक पवित्रता और अच्छेद्यता का अधिकाधिक प्रसार हो।

मुझे अमेरिका के समान सुसस्कृत और शिक्षित स्त्रियाँ संसार मे और कही दृष्टिगोचर नही हुई। हमारे देश में अनेक शिक्षित पुरुष मिलेगे, पर अमेरिका के समान सुशिक्षित स्त्रियाँ आपको कही भी कदाचित् ही मिले। यह एक शाश्वत सत्य है कि जिन गृहो में पवित्र जीवन पाया जाता है, वहाँ स्वयं भगवती लक्ष्मी के रूप मे निवास करती हैं। मुझे अमेरिका मे सहस्रों स्त्रियाँ मिली है, जिनके हृदय हिमखण्ड के समान शुद्ध एवं निष्कलंक है। वे कितनी स्वाधीन है! उन्ही स्त्रियो के हाथ में सभी सामाजिक और नागरिक कर्तव्यो की बागडोर रहती है। वहाँ की शालाएँ और विद्यालय स्त्रियों से बिलकुल भरे हुए है, परन्तु हमारे देश मे स्त्रियों को सड़को पर अरक्षित नही छोड़ा जा सकता। इस देश की स्त्रियो ने मेरे साथ जो सदय व्यवहार किया है, उसका अनुमान करना कठिन है। जिस क्षण मैने इस महान् देश मे पैर रखा, तभी से यहाँ की स्त्रियो ने मेरा घर घर मे स्वागत किया। वे मेरे भोजन और व्याख्यानो का प्रबन्ध करती है। वे ही मुझे बाजार-हाट करने के लिए ले जाती है और मेरी सुविधा और आराम के लिए भरसक प्रयत्न करती हैं। उन्होने मुझ पर जो महान् उपकार किये है, उनके लिए मैं सर्वदा उनका कृतज्ञ एव ऋणी रहूँगा।

क्या आप जानते है कि सच्चा 'शक्ति-उपासक' कौन है? सच्चा शक्ति-उपासक वह पुरुष है, जो सर्वशक्तिमान परमात्मा

की शक्ति का सर्वत्र अनुभव करता है और प्रत्येक स्त्री में उस शक्ति का प्रकाश देखता है। इस देश मे अनेक लोग स्त्रियों को इसी दृष्टि से देखते हैं। मनु महाराज ने कहा है—

" यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: "

—अर्थात् जिस गृह मे नारियों की पूजा की जाती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। अमेरिका के पुरुष स्त्रियों के साथ अत्यन्त सम्मानपूर्वक व्यवहार करते हैं, और परिणाम यह है कि वह एक अत्यन्त उन्नतिशील, विद्वान, स्वतन्त्र और बलवान राष्ट्र हो उठा है। क्या कारण है कि हमारे देशवासी आज तक दासतापूर्ण आपद्ग्रस्त और मृतप्राय बने हुए हैं? इसका उत्तर स्पष्ट है।

अमेरिका की ललनाओं का जीवन कितना शुद्ध, पवित्र और सरल है! बीस या पचीस वर्ष की आयु के पूर्व यहाँ कुछ ही स्त्रियों का विवाह होता है, और वे आकाश-विहारी पक्षियों की भाँति स्वतन्त्रता से विचरण करती है। वे बाजार-हाटों, शालाओं और महाविद्यालयों में जाती हैं, जीविकोपार्जन करती है तथा सभी प्रकार के काम-धन्धे देखती है। उनमे जो सम्पत्तिवान है, वे गरीबों की सहायता और सेवा में जीवन व्यतीत करती है। भारत-वर्ष में क्या स्थिति है? यहाँ नियमित रूप से कन्याओं का विवाह ग्यारह वर्ष की आयु में कर दिया जाता है, जिससे वे कहीं भ्रष्ट या दुश्चरित्र न बन जायँ। इस सम्बन्ध में मनु महाराज का क्या आदेश है? "कन्याओं का पालन और शिक्षण उतनी ही सावधानी से करना चाहिए जितना पुत्रों का।" जिस प्रकार पुत्रों का विवाह तीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य पालन और शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त करना चाहिए उसी प्रकार कन्याओं को भी ब्रह्मचर्य-पालन करना चाहिए और माता-पिता को चाहिए कि वे उन्हे भी

शिक्षित करें। परन्तु वास्तव में हम क्या कर रहे हैं? क्या हम अपनी स्त्रियों की अवस्था को सुधारना चाहते हैं? यदि हम ऐसा करे, तो हमारा कल्याण होने की सम्भावना है। अन्यथा हम उसी अवनत दशा मे रहेंगे, जिसमे आज पड़े हुए है।

अमेरिका की प्रत्येक स्त्री को इतनी उत्तम शिक्षा प्राप्त होती है, जिसकी कल्पना भी अधिकाश भारतीय स्त्रियो के लिए कठिन है। क्या हम अपनी स्त्रियों को वैसी उच्च कोटि की शिक्षा नही दे सकते? हमारा कर्तव्य है कि इस महान् कार्य को तुरन्त आरम्भ कर दे।

* * *

न्यूयार्क मे भाषण देते हुए एक समय स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा था—"मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि भारतीय स्त्रियो की ऐसी ही बौद्धिक प्रगति हो, जैसी इस देश मे हुई है; परन्तु वह उन्नति तभी अभीष्ट है, जब वह उनके पवित्र जीवन और सतीत्व को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए हो। मैं अमेरिका की स्त्रियो के ज्ञान और विद्वत्ता की बड़ी प्रशसा करता हूँ, परन्तु मुझे यह अनुचित दिखता है कि आप बुराइयो को भलाइयो का रंग देकर छिपाने का प्रयत्न करे। बौद्धिक विकास से ही मानव का परम कल्याण सिद्ध नही हो सकता। भारत मे नीतिमत्ता और आध्यात्मिक उन्नति को सर्वोच्च स्थान दिया जाता है, और हम उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते है। यद्यपि भारतीय स्त्रियाँ उतनी सुशिक्षित नही है, फिर भी उनका आचार-विचार अधिक पवित्र होता है।

"प्रत्येक स्त्री को चाहिए कि वह अपने पति के अतिरिक्त सभी पुरुषो को पुत्रवत् समझे। प्रत्येक पुरुष को चाहिए कि वह अपनी पत्नी के अतिरिक्त सभी स्त्रियो को मातृवत् समझे। जब मै उस अनाचरण को, जिसे आप वीरता और साधुता के नाम से

पुकारते है अपने चारों ओर देखता हूँ, तब मेरा हृदय घृणा से भर जाता है। जब तक आप स्त्री-पुरुष-भेद को भूलकर प्रत्येक व्यक्ति मे मानवता का दर्शन नहीं करते, तब तक इस देश की स्त्रियो की यथार्थ उन्नति नही हो सकती। इस दशा को प्राप्त किये विना तो आपकी स्त्रियाँ खिलौने से अधिक और कुछ भी नहीं हैं, और इसी कारण यहाँ इतने विवाह-विच्छेद होते है। यहाँ के पुरुष स्त्रियो के सम्मान मे झुकते और उन्हे आसन प्रदान करते हैं, परन्तु एक क्षण के उपरान्त वे उनकी चापलूसी करने लगते है, वे उनकी सुन्दरता––नख-शिख––की प्रशंसा करना आरम्भ कर देते है। आपको ऐसा करने का क्या अधिकार है? कोई पुरुष इतना प्रगल्भ कैसे हो सकता है कि वह ऐसी स्त्री के साथ इस प्रकार का व्यवहार करे? और स्त्रियाँ उसको सहन भी क्यो करती है? इस प्रकार के आचरण से मनुष्य के निम्नतर भावों का उद्रेक होता है; उससे उच्च आदर्श की प्राप्ति सम्भव नही।

"हमे स्त्री-पुरुप के भेद का चिन्तन न करना चाहिए, पर केवल यही चिन्तन करना चाहिए कि हम सभी मानव हैं और परस्पर एक दूसरे के प्रति सद्व्यवहार और सहायता करने के लिए उत्पन्न हुए है। हम यहाँ देखते है कि ज्यो ही किसी नवयुवक और नवयुवती को अकेले होने का अवसर मिला, त्यों ही वह नवयुवक उस नवयुवती के रूप-लावण्य की प्रशंसा आरम्भ कर देता है, और विवाह के पूर्व ही वह दो सौ स्त्रियो से प्रेमाचार कर चुका होता है। मै यदि इन विवाहेच्छुको मे से एक होता, तो विना इस सव व्यवहार के ही अपने प्रेमपात्र को चुन लेता।

"जब मैने भारतवर्ष मे इस प्रकार के व्यवहार के सम्बन्ध मे सुना, तब मुझे इसका समीप से अध्ययन करने का अवसर

नहीं आया था। मुझसे कहा गया, यह व्यवहार निर्दोष है, वह केवल मजाक है। उस समय मुझे भी ऐसा प्रतीत हुआ कि यह सब ठीक है। तब से अब तक मुझे बहुत प्रवास करने का अवसर आया है, और मेरा दृढ़ विश्वास हो गया है कि यह अनुचित है, यह अत्यन्त दोषपूर्ण है। केवल आप पाश्चात्यवासी ही अपनी आँखे बन्द कर इसे निर्दोष कहते है। पाश्चात्य राष्ट्रो का अभी यौवन है, साथ ही साथ वे अनभिज्ञ, चचल और ऐश्वर्यसम्पन्न है। इन गुणो मे से जब किसी एक के प्रभाव से ही मनुष्य क्या क्या अनर्थ कर डालता है, तब जहाँ सभी एक साथ विद्यमान हो, वहाँ का तो फिर कहना ही क्या !"

* * *

भारत मे स्त्री-जीवन के आदर्श का आरम्भ और अन्त मातृत्व मे ही होता है। प्रत्येक हिन्दू के मन मे 'स्त्री' शब्द के उच्चारण से मातृत्व का स्मरण हो आता है। हमारे यहाँ परमात्मा को भी जगन्माता, जगज्जननी आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। बाल्यावस्था मे प्रत्येक हिन्दू बालक प्रतिदिन प्रात.काल एक कटोरी मे जल भरकर अपनी माता के पास ले जाता है, माता उसमे अपने पैर का अँगूठा डुबा देती है और पुत्र उस पवित्र जल का पान कर हर्षित होता है।

पाश्चात्य देशों मे स्त्री को पत्नी की दृष्टि से देखा जाता है। वहाँ स्त्री मे पत्नीत्व की कल्पना की जाती है। परन्तु इसके विपरीत प्रत्येक भारतीय, नारी मे मातृत्व की कल्पना करता है। पाश्चात्य देशो मे गृह की स्वामिनी और शासिका पत्नी है, भारतीय गृहों मे घर की स्वामिनी और शासिका माता है। पाश्चात्य गृह मे यदि माता हो भी, तो उसे पत्नी के अधीन

रहना पड़ता है, क्योंकि गृहस्वामिनी पत्नी है। हमारे घरों में माता ही सब कुछ है, पत्नी को उसकी आज्ञा का पालन करना ही चाहिए। आदर्श की भिन्नता से दोनों घरों के जीवन में कितना अन्तर हो जाता है !

उपर्युक्त दोनों आदर्शों की गम्भीरतापूर्वक तुलना कीजिये। मैं आपके समक्ष कुछ तथ्य उपस्थित करूँगा, जिससे आप स्वयं इन दोनों के गुण-दोष की विवेचना कर सकें। यदि आप पूछें कि पत्नी के रूप में भारतीय स्त्री का क्या स्थान है, तो इसके प्रत्युत्तर में भारतीय आपसे पूछ सकता है, " माता के रूप में अमेरिकन स्त्री का क्या स्थान है ? उस तपस्विनी एवं ओजस्विनी माता का, जिसने तुम्हें जन्म दिया, तुमने क्या सम्मान किया है ? उस माता का, जिसने हमारे भार को अपने शरीर में नौ मास तक वहन किया—उस माता का, जो हमारे जीवन के लिए यदि अपने प्राणों की आहुति देने की आवश्यकता हो, तो बीस बार भी देने को उद्यत है, तुमने क्या गौरव किया है ? धन्य है माता, जो मेरी दुष्टता पर भी ध्यान न देकर अपने प्रेम की अखण्ड धारा से मुझे आप्यायित करती रहती है। परन्तु तुमने उसे क्या स्थान दिया है ? साधारण-सी बात को लेकर विवाह-विच्छेद के लिए न्यायालय का द्वार खटखटानेवाली तुम्हारी उस पत्नी के सामने उसका स्थान कहाँ ? हे अमेरिका की स्त्रियो, तुमने मातृत्व की क्या दुर्दशा कर रखी है !" अति आदरणीय मातृत्व के लिए आपके देश में कोई स्थान नहीं है। मुझे यहाँ वह पुत्र दिखायी नहीं देता, जो कहता हो कि माता का आसन सर्वोच्च है। हमारे देश मे तो कोई भी पुरुष यह कभी इच्छा नही करता कि उसकी मृत्यु के उपरान्त भी उसकी पत्नी और पुत्र उसकी

माता का स्थान ले। यदि हमारी मृत्यु माता के समक्ष हो, तो हम चाहते है कि मृत्यु के समय पुनः एक बार हमारा सिर माता की गोद में हो। इस देश में उसका क्या स्थान है?

क्या 'स्त्री' संज्ञा किसी भौतिक शरीर मात्र को दी गयी है? हिन्दू मन उन आदर्शो के प्रति सशंकित रहता है, जिनमें यह कहा जाता है कि मांस को मांस से ही संलग्न रहना चाहिए। नहीं, नही, देवि! तुम्हारा मासलता से कोई सम्बन्ध नही--तुम केवल शरीर ही नही, उससे परे कुछ और भी हो। तुम्हारा नाम तो सदा ही पवित्रता का प्रतीक रहा है। विश्व मे 'जननी' नाम से अधिक पवित्र और निर्मल दूसरा कौनसा नाम हैं, जिसके पास कभी वासना और पाशविक तृष्णाएँ फटक भी नही सकतीं? यही मातृत्व भारतीय नारीत्व का आदर्श है।

भारतीय माता का स्वरूप क्या है? पुत्र की पत्नी घर में आती है, वह माता की दृष्टि में अपनी पुत्री के समान है और उसने उस पुत्री का स्थान ले लिया है, जो विवाहित होकर अपनी माता के घर से अन्यत्र चली गयी है। उसे घर की सम्राज्ञी माता की आज्ञा के अनुसार चलना आवश्यक है। यद्यपि सन्यास-आश्रम मे प्रवेश करने के कारण मेरे लिए विवाह करना निषिद्ध है, परन्तु फिर भी कल्पना कीजिये--यदि मै विवाह कर सकता और यदि मेरी पत्नी मेरी माता को किसी कारण अप्रसन्न रखती तो ऐसी पत्नी से मुझे बड़ी निराशा होती। क्या पुत्र श्रद्धापूर्वक माता की पूजा नही करता? फिर पुत्रवधू को माता की पूजा क्यों न करनी चाहिए? यदि पुत्र उसकी सेवा-अर्चा करता है, तो पुत्रवधू को भी यही करना चाहिए। उसे क्या अधिकार है कि पति के प्रतिकूल जाकर वह माता पर शासन करे?

स्त्री-जीवन के इस आदरणीय स्थान को प्राप्त करने के लिए स्त्री के नारीत्व का पूर्ण विकास होना आवश्यक है। और वह वस्तु, जो नारीत्व को पूर्ण करने के लिए तथा नारी को नारी बनाने के लिए अपेक्षित है--है मातृत्व। मातृपद प्राप्त होते तक उसे अपेक्षा करनी चाहिए, तदुपरान्त उसे उस पद का अधिकार प्राप्त होगा। हिन्दू संस्कृति के अनुसार स्त्री-जीवन का महान् उद्देश्य माता का गौरवमय पद प्राप्त करना ही है, परन्तु आज कितना परिवर्तन हो गया है ! मेरे माता-पिता ने कितने दिनों तक भगवान से प्रार्थना की थी कि उन्हे एक सन्तान प्राप्त हो। भारत मे माता-पिता प्रत्येक वालक के जन्म के लिए ईश्वर मे प्रार्थना याचना करते है। 'आर्य' की परिभाषा लिखते हुए धर्मवेत्ता मनु महाराज कहते है--वही सन्तान आर्य है, जो माता-पिता द्वारा ईश्वर की अभ्यर्थना करने के उपरान्त जन्म लेती है; विना प्रार्थना के उत्पन्न प्रत्येक सन्तान मानो अधर्म से उत्पन्न सन्तान है। इस प्रकार की सन्तानों से इस संसार में अधिक क्या आशा की जा सकती है ? प्रत्येक वच्चे के लिए माता-पिता को प्रार्थना करनी चाहिए।

अमेरिका की माताओ ! इस पर जरा विचार कीजिये ! हृदय के अन्तस्तल से जरा सोचिये, क्या आप सचमुच नारी होना चाहती है ? इसमे किसी जाति या किसी देश का प्रश्न नहीं--किसी प्रकार के राष्ट्रीय गौरव के मिथ्या गर्व का स्थान नहीं। इस क्षणभंगुर जीवन में, इस दुःख एवं सन्ताप-पूर्ण ससार में भला कौन अभिमान कर सकता है ? स्रष्टा की अनन्त शक्तियों के समक्ष मानव कितना तुच्छ है ! आप सब से आज में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछना चाहता हूँ। क्या आप अपने वच्चों के जन्म के लिए ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना करती हैं ? क्या आप

सब अपनी मातृ-पदवी के लिए ईश्वर के निकट कृतज्ञ है ? क्या आप सब यह जानती है कि नारी मातृत्व का पद प्राप्त कर पावित्र्यपूर्ण गौरव को प्राप्त करती है ? आप अपना हृदय टटोलें और गम्भीर विचार करे। यदि आपको उपर्युक्त विचार पर विश्वास नहीं है, तो आपका विवाह मिथ्या है, आपका नारीत्व निरर्थक है और आपकी शिक्षा एक ढकोसला है। यदि आपके बच्चे प्रार्थना और तपस्या के विना जन्म लेते है, तो वे संसार के लिए शाप सिद्ध होंगे।

आप नारीत्व के भिन्न भिन्न आदर्शों की तुलना करें। मातृत्व के उपरान्त आपका उत्तरदायित्व अत्यन्त महान् हो जाता है। इसी मातृत्व की नींव पर अपने जीवन का निर्माण कीजिये। क्या आप बतला सकती है कि संसार में माता का स्थान इतना ऊँचा क्यों है ? हमारे शास्त्रानुसार माता की महानता इसलिए है कि गर्भ में स्थित बालक पर माता का जो प्रभाव पड़ता है, वही बालक को शुभ या अशुभ प्रवृत्तियुक्त बनाता है, उसे देवता या उनके विपरीत राक्षस के पद पर आसीन करता है। आप सैकड़ों महाविद्यालयों मे अध्ययन करे, लाखों ग्रन्थ पढ़े, संसार के समस्त विद्वानों के संसर्ग का लाभ उठाये, परन्तु माता के गर्भ मे पड़े उपर्युक्त सस्कारों का प्रभाव इनसे कितना ही अधिक कल्याणप्रद है। शास्त्र का मत है कि बालक जन्म से ही देव या असुर पैदा होता है। शिक्षा आदि का स्थान बाद मे आता है-- उनका प्रभाव गौण होता है। मातृगर्भ मे आपने जो कुछ प्राप्त किया है, वही आपको देव या दानव बनाता है। यदि आपको माता ने रोगी शरीर दिया है, तो कितने ही औषधि-भण्डारों को खाली कर डालिये, फिर भी क्या आप अपने को स्वस्थ रख सकते है ? क्या आप एक भी स्वस्थ पुरुष बता सकते है जिसे

रोगी, दुर्बल और विषैले रक्तवाले माता-पिता ने जन्म दिया है ? एक भी नहीं ! हम प्रचण्ड सुप्रवृत्ति या कुप्रवृत्ति के साथ जन्म लेते है, हम जन्मजात देव या असुर होते हैं। शिक्षा आदि का प्रभाव गौण ही होता है।

हमारे शास्त्र कहते है—बालक का जन्म होने के पूर्व की परिस्थिति एवं वातावरण को पवित्र बनाये रखो। माता की पूजा क्यों की जाती है ? इसका कारण यह है कि उसने उत्पन्न होनेवाली सन्तान के लिए अपने को पवित्र बनाया और अनेक प्रकार के तप और व्रत किये। पतिव्रता ही भारतीय नारी की अमूल्य निधि है। स्मरण रखिये, भारत में कोई भी स्त्री अपने शरीर को किसी भी व्यक्ति को समर्पण नहीं कर देती, वह उसका अपना हुआ करता है। इंग्लैण्ड में एक नये सुधार के अनुसार स्त्री-पुरुषों को तलाक एवं पुनर्विवाह का वैधानिक अधिकार प्रदान किया गया है, पर कोई भी भारतवासी इस अधिकार का उपयोग करने के लिए उद्यत न होगा। भारतीय स्त्रियाँ अपने पति के साथ शारीरिक मिलन के अवसर पर उच्च एवं पवित्र विचारों की प्राप्ति के लिए कितनी प्रार्थनाएँ और प्रण करती हैं; क्योंकि उनकी दृष्टि में बालक के जन्म के सभी कारण एवं तत्कालीन परिस्थितियाँ मानो जगत्स्रष्टा परमात्मा की पवित्रतम प्रतीक है। इस प्रार्थना से विश्व मे उस नये आत्मा का प्रादुर्भाव होता है, जिसमें भले या बुरे संस्कारों की प्रचण्ड शक्ति विद्यमान रहती है। क्या पति-पत्नी का यह मिलन केवल खेल है ? क्या यह केवल क्षणिक इन्द्रिय-सुख के लिए ही है ? क्या यह केवल पाशविक सुख प्राप्त करने का साधन मात्र है ? भारतीय आदर्श कहता है—नहीं, नहीं, सहस्र बार नहीं !

साथ ही साथ हमे एक दूसरे विषय पर ध्यान देना चाहिए। हमारे विचार का विषय था कि हमारा आदर्श माता के प्रति प्रेम होना चाहिए--उस माता के प्रति, जो त्याग, प्रेम और सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति है। माता की पूजा करने का मूल कारण यही है। मुझे इस संसार में लाने के लिए उसे कितनी तपस्याएँ करनी पड़ीं, कितना आत्मत्याग करना पड़ा! उसने मुझे जन्म देने के लिए वर्षों अपने शरीर को, मन को, भोजन को, वस्त्रों को, यहाँ तक कि अपनी कल्पनाओं को शुद्ध और पवित्र रखा। यही कारण है कि हम उसे पूज्य मानते हैं। और इसीलिए मातृत्व के साथ पत्नीत्व सम्बद्ध है।

आप पाश्चात्यदेशवासी व्यक्तिवादी है। आप कोई कार्य इसलिए करते है कि वह आपको प्रिय है। आपके मतानुसार मैं यहाँ उपस्थित सब लोगों को धक्के मार सकता हूँ। क्यों? इसलिए कि मुझे यह अच्छा लगता है। मैं इस स्त्री से क्यों विवाह करता हूँ?--क्योंकि इससे मुझे प्रसन्नता होती है। यह स्त्री मुझसे क्यों विवाह करती है? क्योंकि मै उसे प्रिय हूँ। इस अनन्त विश्व मे मै और मेरी पत्नी, बस ये ही दो प्राणी है, वह मुझसे परिणय करती है, और मै उससे; इससे भला अन्य किसी का क्या बनता बिगड़ता है, इसके लिए अन्य कोई उत्तरदायी नहीं है। बस इतना ही--इससे अधिक आप और कुछ नही सोच सकते। कोई भी स्त्री-पुरुष जंगल मे जाकर रह सकते है और मनमाना जीवन बिता सकते हैं; परन्तु जब उन्हें समाज में रहना है, तब उनके विवाह का समाज के जीवन पर अत्यन्त शुभ या अशुभ प्रभाव पड़ सकता है। सम्भव है, उनके बच्चे दानव बनें, जो सर्वत्र लूटने-पाटने, डाका डालने, जलाने, हत्या करने और

मद्यपान आदि नीच कर्मों में रत रहें। अतः समाज मे रहने पर उन्हें अपना जीवन समाज के हित को देखते हुए ही व्यतीत करना चाहिए––न कि केवल अपने ही स्वार्थ को देखते हुए।

हिन्दू समाज ने जाति की नैतिक पवित्रता का आदर्श ऊँचा रखने के लिए बालविवाह की प्रथा प्रचलित की, परन्तु उस प्रथा ने कालान्तर में जाति को अवनत ही बनाया। किन्तु साथ ही में यह अस्वीकार भी नही कर सकता कि बालविवाह से जाति अधिक नीतिमान तथा पवित्र बनती है। आप इन दोनो मे किसे अधिक उच्च स्थान देंगे ? यदि आप राष्ट्र के नैतिक पावित्र्य को अधिक महत्त्व देते है, तो बालविवाह द्वारा आप राष्ट्र के स्त्री-पुरुषों की शारीरिक शक्ति को क्षीण बना डालते है। परन्तु विचार कीजिये, इंग्लैण्ड मे बालविवाह न प्रचलित होने से उसकी क्या कोई अधिक अच्छी स्थिति है ? बिलकुल नही। क्यों ? इसलिए की नैतिक पावित्र्य और संयम ही प्रत्येक राष्ट्र का जीवन है। क्या विश्व का इतिहास हमे यह नही दिखाता कि किसी भी राष्ट्र के पतन का आरम्भ भोगविलास तथा चारित्र्यहीनता की वृद्धि से होता है ? यदि किसी प्रकार ये दोष किसी राष्ट्र में प्रविष्ट हो गये तो फिर उसका सर्वनाश निश्चित है। फिर इन दुःखमय उलझनों से मुक्त होने का हमारे पास क्या साधन है ? माता-पिता द्वारा अपनी सन्तान के लिए वर-वधू का चुनाव करने से यौवन के क्षणिक आवेश मे आकर किये गये विवाहों और तज्जन्य उच्छृंखलता से समाज की रक्षा होती है। भारत की कन्याएँ कही अधिक व्यवहारदक्ष और क्षणिक आवेगों से मुक्त होती हैं। उनका जीवन उतना काव्यमय नही रहता। दुनिया के अनुभवों से शून्य होने के कारण जब चंचल यौवन के मद से ग्रस्त नवयुवक

और नवयुवतियाँ स्वय ही अपने पति-पत्नी का चुनाव करती है, तव साधारणत: उनके जीवन आनन्दमय सिद्ध नही होते। भारतीय नारी सामान्यत: वडे आनन्द का जीवन व्यतीत करती है, उसका गार्हस्थ्य जीवन सुख-शान्ति से बीतता है; गृहकलह के उदाहरण कम ही दिखायी देते है। इसके विपरीत, संयुक्त-राज्य अमेरिका मे, जहाँ प्रत्येक को अपना साथी चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता है, गृहकलह से दु.खी और सुख-शान्ति-विहीन परिवारों की सख्या वहत अधिक है।

शक्ति की कृपा एव प्रसन्नता विना कोई भी कार्य नहीं हो सकता। अमेरिका और यूरोप के लोग शक्ति के उपासक हैं। परन्तु वे शक्ति की सच्ची उपासना नही जानते। अज्ञान के कारण वे उसकी पूजा इन्द्रिय-तुष्टि द्वारा करते है। अतएव कल्पना कीजिये कि इसके विपरीत जो उसकी पूजा अत्यन्त पवित्रतापूर्वक एव सात्त्विक भाव से करते है तथा उसमे मातृत्व का दर्शन करते है, उनका कितना अभ्युत्थान एव कल्याण न होगा।

अत: इस विपय पर गम्भीर विचार करने से हमे भारत के अध:पतन का कारण स्पष्ट दिखायी पडने लगता है। हम मनु के उस महान् आदेश की ओर संकेत कर ही चुके है कि "विश्व के समस्त दैवी गुण और शक्तियाँ उस गृह, समाज और राष्ट्र में विद्यमान रहती है, जहाँ नारी की पूजा होती है।" "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।" हम भारतवासियो ने स्त्रियो पर वडा अत्याचार किया है। हमारी अवनति का कारण यही है कि हम नारी को कीड़े-मकोडे के समान घृणित समझते है, उसे नरक का द्वार वतलाते हैं। आश्चर्य है, हम स्वर्ग और नरक के अन्तर को नही जान सके! "याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्"—अर्थात् सर्व-शक्तिमान परमात्मा प्रत्येक को उसकी योग्यता के अनुसार पुरस्कार

प्रदान करता है। क्या हम अपनी बकवास से परमात्मा की आंखों में धूल झोंक सकते है ? श्वेताश्वतर उपनिषद् में ऋषि कहते हैं—

"त्वं स्त्री त्वं पुमान् असि, त्वं कुमार उत वा कुमारी।"

—"परमात्मन्, तुम्ही स्त्री हो, तुम्ही पुरुष का रूप धारण करते हो और तुम्हीं कुमार या कुमारी हो।" इसके विपरीत आज हम केवल चिल्ला रहे है—"दूरं अपसर, रे चाण्डाल।" "केन एषा निर्मिता नारी मोहिनी।"—"ओ नीच चाण्डाल दूर भाग।" "इस ठगनेवाली स्त्री को ईश्वर ने क्यों बनाया ?"

यह सब होते हुए भी भारत की इस पवित्र भूमि में, सीता और सावित्री के देश में, आज भी स्त्रियों में वह चरित्र, वह सेवाभाव, वह प्रेम, वह दया, वह सन्तोष और भक्ति पायी जाती है, जो विश्व मे मुझे कही अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं हुई। पाश्चात्य देश की नारी में बहुधा नारीत्व का सर्वथा अभाव दिखा। वे पुरुषों से होड़ लेने में तल्लीन है। वे यान चलाती हैं, कार्यालयों में कलम घिसती है, उच्च शिक्षा प्राप्त करती है और सभी प्रकार के धन्धें करती हैं। केवल भारतीय स्त्री मे ही नारीसुलभ लज्जा देखकर हृदय आनन्दित होता है। इतनी गुणसम्पन्न और सुयोग्य स्त्रियों के होते हुए भी भारतवासी स्त्री को उन्नत नही बना सके ! भारत में हमने उसे ज्ञानालोक प्रदान करने का प्रयत्न नहीं किया। भारतीय स्त्री को यदि उचित शिक्षा मिले, तो वह संसार की सर्वश्रेष्ठ आदर्श नारी बन सकती है।

भारतीय स्त्री की वर्तमान स्थिति और उसका भविष्य

"स्त्रियो की पूजा करके ही सब जातियाँ बडी हुई है। जिस देश, जिस जाति मे स्त्रियो की पूजा नही होती, वह देश, वह जाति कभी वडी नही हुई, और न हो सकेगी। तुम्हारी जाति का जो अध.पतन हुआ है, उसका प्रधान कारण है—इन्ही सब शक्तिमूर्तियो की अवहेलना।"

दो वड़े सामाजिक अनर्थ भारत की प्रगति में रोड़ा अटका रहे हैं। ये दो कुत्सित अनाचार हैं—स्त्रीजाति के पैरों में पराधीनता की बेड़ी डाल रखना, और निर्धन जनता को जाति-भेद के नाम पर समस्त मानवी अधिकारों से वंचित रखना। समाज के इन महत्त्वपूर्ण अंगों की प्रगति हुए विना देश का उन्नतिशील होना असम्भव है। मलाबार प्रान्त की स्त्रियाँ प्रत्येक क्षेत्र मे पुरुषों से आगे है। वहाँ प्रत्येक घर अत्यन्त स्वच्छ दिखायी देता है और सब की अपेक्षा शिक्षा को अधिक प्रोत्साहन दिया जाता है। जब मैं उस प्रान्त मे गया था, तो मुझे ऐसी अनेक स्त्रियाँ मिलीं, जो सरलता से संस्कृत मे उत्तम सम्भाषण करती थीं। भारत के अन्य भागों मे दस लाख मे ऐसी एक भी स्त्री नहीं मिल सकती। इस प्रान्त की उन्नति का और एक कारण है। यह प्रान्त कभी भी पोर्तुगाल-निवासियों या मुसलमानों द्वारा विजित नही हुआ। स्वातन्त्र्य से ही उद्धार एवं उन्नति होती है, पराधीनता और दासता से हीनता की वृद्धि एवं पतन होता है।

द्रविड़ जातियों का आगमन मध्य एशिया से हुआ। इनका उद्गम आर्येतर वंशों से है और भारत मे इनका आगमन आर्यों के पूर्व हुआ। इनमे से वे लोग जो दक्षिण भारत में जा वसे, अत्यन्त सभ्य और सुसंस्कृत थे। उनमे स्त्रियों का स्थान पुरुषों की अपेक्षा ऊँचा था।

ईश्वर ने ससार मे प्रत्येक मनुष्य को पुण्य और पाप, भले और बुरे को पहचानने की बुद्धि दी है, परन्तु वीर वही है, जो दु:ख, भ्रम और भूलों से भरे संसार का निर्भयता से सामना करता है; एक हाथ से दु:खी ससार के आँसू पोंछता है, और दूसरे से उसे मुक्ति का मार्ग दिखाता है। विश्व मे एक ओर हम मिट्टी के ढेले के समान जड़, अक्रिय, दकियानूसी समाज को देखते है, और दूसरी ओर अशान्त, धैर्यहीन और निरन्तर अग्नि उगलनेवाले समाज-सुधारक को। भलाई का रास्ता तो इन दोनों के बीच में से है। जापान मे मैंने सुना कि जापानी बालिकाओं का दृढ़ विश्वास है कि गुड़िया को सच्चे हृदय से प्रेम करने पर वह भी चेतन और जीवित हो उठती है। अतएव जापानी बालिकाएँ अपनी गुड़ियाओ को कभी नहीं फोड़ती। हे महाभाग भारतवासियो, मुझे भी पूर्ण विश्वास है कि यदि तुम सच्चे हृदय से भारत के कोटिश: जनसमुदाय को प्यार करो, तो वह भी पुन: जीवित और जागृत हो सकता है। आज भारत के करोड़ों अभागे लाल धनहीन, वित्तहीन, बुद्धिहीन, अशिक्षित, पतित एवं भूखे रहकर आपसी ईर्ष्या-द्वेष और कलह से नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। भारत-वर्ष तभी जागृत और चेतनापूर्ण हो सकता है, जब इस देश के सहस्रों उदार नवयुवक और नवयुवतियाँ उदात्त भावनाओ से परिपूर्ण हो अपनी सांसारिक लालसाओं और सुख-सम्पदा की

कामना को ठुकराकर, अज्ञान और दारिद्र्य के महासागर में गोते खाते हुए इन कोटिकोटि बन्धुओं का उद्धार करने के लिए कटिबद्ध होकर अपनी सारी शक्ति इस महान् कार्य मे लगा दें। मेरे इस तुच्छ और अकिंचन जीवन का अनुभव है कि सद्भावना, सचाई, शुद्ध हृदय और प्राणिमात्र के लिए असीम प्रेम मे वह शक्ति है, जिसके समक्ष विश्व के समस्त बल घुटने टेक देते है। इस प्रकार के दिव्य गुणों से युक्त एक आत्मा भी पाखण्ड एवं पाशवी वृत्ति से पूर्ण लाखो मनुष्यों के दुष्प्रयत्नो को निष्फल कर सकता है।

* * *

'प्रबुद्ध भारत' के प्रतिनिधि लिखते है:--सम्पादक के आदेशानुसार मैं भारतीय स्त्रियो की वर्तमान स्थिति तथा उनके भविष्य के सम्बन्ध मे स्वामी विवेकानन्दजी के विचार जानना चाहता था। अतः उनसे भेट करने का अवसर देख रहा था। उस दिन रविवार था--सवेरे का समय। हिमालय की एक मनोहर उपत्यका मे आखिर स्वामीजी से मेरी भेट हो ही गयी। मैंने उनके पास अपना मन्तव्य प्रकट किया। स्वामीजी ने कहा, "आओ, जरा घूम आये।" और हम लोग तुरन्त विश्व के उन सुन्दरतम प्राकृतिक दृश्यों के बीच घूमने चल पड़े। कही धूप और कही छाया से ढके मार्गो से होते हुए हम शान्तिपूर्ण ग्रामों मे से होकर चले जा रहे थे। कही ग्रामीण बच्चे आनन्द से खेल-कूद रहे थे और कही चारो ओर सुनहले खेत लहलहा रहे थे। ऊँचे-ऊँचे वृक्ष ऐसे दीखते थे, मानो नील गगन को भेदकर उसके पार जाना चाहते हो। खेतों मे एक ओर कुछ कृषक बालाएँ हाथों में हँसिया लिए शीतऋतु के लिए बाजरी के भुट्टे काटकर एकत्रित

कर रही थीं; दूसरी ओर सेवों की एक सुन्दर वाटिका दिखायी देती थी, जिसमे वृक्षो के नीचे आरक्त फलों के ढेर वडे ही सुहावने लगते थे। अव हम तलहटी पार कर एक विस्तृत मैदान मे आ गये, जिसके दूसरी ओर हिमाच्छादित उन्नतमस्तक पर्वत-राज शुभ्र वादलो को भेदकर अभूतपूर्व सुन्दरता से खड़े थे।

लम्बी स्तब्धता के उपरान्त अन्त मे स्वामीजी ने शान्ति भग करते हुए कहा, "स्त्री-जीवन सम्वन्धी आर्यो और सेमिटिक लोगो के आदर्शो मे आकाश-पाताल का अन्तर है। सेमिटिक लोगो मे स्त्री की उपस्थिति ईश्वरोपासना के लिए घातक समझी गयी है और उसे कोई भी धार्मिक कृत्य करने का अधिकार नही है; यहाँ तक कि भोजन के लिए प्रयुक्त पक्षी को भी काटना उसके लिए निषिद्ध है। इसके विपरीत, आर्यो मे एक गृहस्थ अपनी पत्नी के विना कोई भी धार्मिक कर्म नहीं कर सकता।"

स्वामीजी के मुख से इस प्रकार के अद्भुत विचार सुनकर मैं तो आश्चर्यान्वित हो गया और तुरन्त पूछा, "तो क्या, स्वामीजी, हिन्दू धर्म आर्य नही है?"

स्वामीजी ने वडी शान्ति से कहा, "आधुनिक हिन्दू धर्म अधिकाशत: एक पौराणिक धर्म है जिसका उद्गम वौद्धकाल के पश्चात् हुआ है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने एक स्थान पर लिखा है कि यद्यपि गृहस्थाश्रम मे वैदिक रीति के अनुसार होनेवाले सस्कार एवं अग्निहोत्र में स्त्री की उपस्थिति अनिवार्य है, तथापि कई स्थानो मे प्रचलित रीति के अनुसार वह अपने घर मे स्थित शालग्राम शिला या गृहदेवता की मूर्ति को हाथ नहीं लगा सकती, क्योंकि इस प्रकार की पूजा का उद्गम पौराणिक काल के उत्तरार्ध मे पाया जाता है।"

"अत आपके अनुसार हमारे देश मे पाया जानेवाला स्त्री-पुरुष का भेद पूर्णतः बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण है ?"

स्वामीजी—"अवश्य, जो कुछ भेद आज पाया जाता है, उसका मूल बौद्ध धर्म मे ही वर्तमान है; परन्तु यूरोपीय आलोचना से प्रभावित होकर, और इसके फलस्वरूप, भारतीय एव यूरोपीय सस्कृति मे गहरा भेद देखकर हम यह न समझ बैठना चाहिए कि भारतीय सस्कृति मे स्त्री का अनादर किया गया है। पिछली कई सदियो मे भारत की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति ऐसी थी कि स्त्रियो की विशेष सरक्षण की आवश्यकता थी। भारतीय स्त्री की वर्तमान दशा का मूलभूत कारण हमारी सस्कृति मे स्त्रीजाति की हीनता नही, प्रत्युत देश की उपर्युक्त परिस्थिति ही है।"

"स्वामीजी, तो क्या आप भारतीय स्त्री की वर्तमान दशा से पूर्णत सन्तुष्ट है ?"

स्वामीजी—कदापि नही, परन्तु उस दशा मे सुधार का साधन यही है कि हम स्त्रियो को उचित शिक्षा दे और उसके उपरान्त वे स्वयं अपनी समस्याओ को सुलझा लेगी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ऐसा करने पर भारतीय स्त्रियाँ अपनी समस्याओ का हल करने मे ससार के किसी भी भाग की स्त्रियो से पीछे नही रहेगी। हमे उनकी समस्याओ मे हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नही।

"स्वामीजी, क्या आप बतला सकते है कि हमारे देश मे स्त्रियो की हीनता का प्रादुर्भाव बौद्ध धर्म से किस प्रकार हुआ ?"

स्वामीजी—"इस हीनता का प्रादुर्भाव बौद्ध धर्म के पतन-काल मे ही हुआ। कोई भी आन्दोलन किसी एक नवीन विशेषता

के कारण संसार में शीघ्र ही फैल जाता है, परन्तु जब उसका पतन होता है, तब उसकी यह अभिमानास्पद विशेषता ही उसकी दुर्बलता का मुख्य कारण बन जाती है। पुरुषश्रेष्ठ भगवान् बुद्ध अत्यन्त संगठन-कुशल थे, और इसी कुशलता के कारण उन्होंने संसार को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उनका धर्म भिक्षुओं का धर्म था। और इसी कारण एक स्वाभाविक कुपरिणाम यह हुआ कि प्रत्येक पीतवस्त्रधारी भिक्षु सम्मानास्पद हो गया। उन्होंने पहली बार विहारों के रूप में सामूहिक जीवन की भी प्रतिष्ठा की, जिसका एक अनिवार्य फल यह हुआ कि भिक्षुणियों का स्थान भिक्षुओं की अपेक्षा निम्न हो गया, क्योंकि श्रेष्ठ भिक्षुणी के लिए भी भिक्षु की आज्ञा एवं अनुमति के बिना कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करना निषिद्ध था। इस प्रकार के जीवन से धर्म संगठित तो हो गया, परन्तु अन्ततोगत्वा इसके कुछ परिणाम खेदजनक भी हुए।"

"परन्तु स्वामीजी, संन्यासधर्म तो वेदविहित है।"

स्वामीजी--"अवश्य संन्यास वेदप्रतिपादित है, परन्तु वैदिक सिद्धान्त के अनुसार संन्यासाश्रम में स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं रहता। क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि विदेहराज जनक की राजसभा में किस प्रकार धर्म के गूढ़ तत्त्वों पर महर्षि याज्ञवल्क्य से वाद-विवाद हुआ था? इस वादविवाद में ब्रह्मवादिनी वाचक्नवी ने प्रधान भाग लिया था। उसने कहा था, 'मेरे दो प्रश्न मानो कुशल धनुर्धारी के हाथ में के दो तीक्ष्ण बाण हैं।' उपनिषद् में जहाँ यह प्रसंग आया है, वहाँ पर उनके स्त्री होने पर कोई बात नहीं उठायी गयी है। तुम्हें यह भी विदित होगा कि प्राचीन गुरुकुलों में बालक और बालिकाएँ समान रूप से शिक्षा प्राप्त करते थे। इससे अधिक लाभ और क्या चाहिए? हमारी संस्कृत

भाषा के सुन्दर नाटको को पढ़ो— 'शकुन्तला' नाटक को ही देखो और फिर बताओ कि इस महान् ग्रन्थ की तुलना में टेनीसन की 'राजकुमारी' मे हमें कौनसी शिक्षाप्रद बात प्राप्त हो सकती है !"

"स्वामीजी, मैंने आज तक अपने अतीत की विस्मृत गौरव-गरिमा इतने चित्ताकर्षक रूप में कभी नही सुनी थी। आपमें उसे प्रकट करने की अद्भुत शक्ति है।"

स्वामीजी शान्तिपूर्वक बोले, "सम्भव है, इसका कारण यह हो कि मैंने पृथ्वी के दोनों गोलार्धो का पर्यटन किया है। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि जिस जाति ने सीता को जन्म दिया-—भले ही यह कल्पना मात्र हो—उस जाति मे स्त्रीजाति के प्रति इतना सम्मान तथा श्रद्धा है कि उसकी तुलना ससार के अन्य किसी भाग से नही हो सकती। पाश्चात्य स्त्रियाँ ऐसे कई कानूनी बन्धनो से जकड़ी हुई है, जिनसे भारतीय स्त्रियाँ सर्वथा मुक्त एव अपरिचित है। भारतीय समाज मे गुण और दोष दोनों विद्यमान है और यही स्थिति पाश्चात्य समाज की भी है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि जगत् के सभी भागो में प्रीति, कोमलता और सत्यनिष्ठा को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया जाता है, और प्रत्येक देश मे इन्हें व्यक्त करने की सामाजिक रीतियाँ भिन्न भिन्न होती हैं। जहाँ तक गार्हस्थ्य जीवन का सम्बन्ध है, मै विना किसी सकोच के कह सकता हूँ कि भारतीय प्रणाली मे अन्य देशों की अपेक्षा अनेक सद्गुण हैं।"

"स्वामीजी, तो क्या भारतीय स्त्रियों के समक्ष कोई भी समस्याएँ नही है?"

स्वामीजी—"है, अवश्य है, उन्हे कई गम्भीर समस्याएँ सुलझानी हैं; परन्तु इनमे से एक भी ऐसी नही, जो 'शिक्षा'

द्वारा न सुलझायी जा सके। परन्तु सच्ची शिक्षा की धारणा अभी तक हममें से किसी को भी नही।"

"स्वामीजी, शिक्षा की आपकी क्या परिभाषा है?"

स्वामीजी ने स्मित हास्य से कहा, "मै परिभाषाएँ देने के विरुद्ध हूँ। परन्तु इस सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि सच्ची शिक्षा वह है, जिससे मनुष्य की मानसिक शक्तियों का विकास हो। वह शब्दो को रटना मात्र नही है। वह व्यक्ति की मानसिक शक्तियो का ऐसा विकास है, जिससे वह स्वयमेव स्वतन्त्रतापूर्वक विचार कर ठीक ठीक निश्चय कर सके। हम चाहते है कि भारत की स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे वे निर्भय होकर भारत के प्रति अपने कर्तव्य को भलीभाँति निभा सके और संघमित्रा, लीला, अहिल्याबाई और मीराबाई आदि भारत की महान् देवियों द्वारा चलायी गयी परम्परा को आगे बढ़ा सके एव वीरप्रसू बन सकें। भारत की स्त्रियाँ पवित्रता और त्याग की मूर्ति है, क्योकि उनके पास वह बल और शक्ति है, जो सर्वशक्तिमान परमात्मा के चरणों मे सर्वस्व अर्पण करने से प्राप्त होती है।"

"स्वामीजी, आपके विचारानुसार शिक्षा मे धार्मिक शिक्षा का भी समावेश होना चाहिए?"

स्वामीजी ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, "मेरा दृढ विश्वास है कि धर्म ही शिक्षा का सार है। हाँ, यह ध्यान रखना आवश्यक है, यहाँ धर्म से मेरा अभिप्राय किसी विशिष्ट धर्म-मत से नहीं है। मै समझता हूँ, अन्य विषयो के समान अध्यापक को इस सम्बन्ध मे भी छात्रो को प्रारम्भिक मार्गदर्शन करना चाहिए और उसे इस योग्य बनाना चाहिए कि वह अपने कम से कम विरोधवाले मार्ग पर आगे बढ सके।"

"पर धर्म ने ब्रह्मचर्य की जो इतनी प्रसशा की है, उससे तो ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करनेवाली स्त्री का स्थान माता एवं पत्नी से ऊँचा हो जाता है। क्या यह स्त्रीजाति पर सीधा आघात नही है ?"

"तुम्हे स्मरण रहना चाहिए कि यदि धर्म स्त्रियो के लिए ब्रह्मचर्य की उच्चता एव महानता दिखाता है, तो वह पुरुषो के लिए भी ब्रह्मचर्य की उतनी ही उच्चता और महानता प्रदर्शित करता है। तुम्हारे प्रश्न से यह भी ज्ञात होता है कि तुम्हारे मन में कोई गड़बड़ी मची हुई है। हिन्दू धर्म मे मानव का केवल एक ही कर्तव्य वतलाया गया है और वह है--इस अनित्य क्षणभंगुर जगत् मे नित्य शाश्वत तत्त्व की प्राप्ति। उसकी प्राप्ति के लिए कोई एक निश्चित मार्ग नही है। ब्रह्मचर्य हो या विवाह, भला हो या बुरा, विद्या हो या अविद्या---इनमे से कोई भी खराव नही, यदि वह मनुष्य को उस ध्येय की ओर ले जाय। यही पर हिन्दू धर्म और वौद्ध धर्म मे महान् अन्तर है। हिन्दू धर्म मे उस उद्देश्य की प्राप्ति के अनेक मार्ग एवं साधन वतलाये गये है, उस निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के भिन्न भिन्न मार्गों का विधान है; परन्तु वौद्ध धर्म मे जीवन का प्रधान आदेश वाह्य जगत् की क्षणिकता का अनुभव कर लेना ही है, और मोटे रूप से वह केवल एक ही मार्ग द्वारा हो सकता है। क्या तुम्हे महाभारत में वर्णित युवक योगी की कथा विदित नही, जो क्रोध से उत्पन्न अपनी प्रवल इच्छाशक्ति के प्रभाव से एक कौए और क्रौंच को भस्म कर अपनी योगशक्ति पर गर्व करने लगा था ? फिर यही योगी एक दिन किसी नगर मे पहुँचकर देखता है कि एक स्त्री अपने रोगी पति की सेवा-शुश्रूपा मे निरत है, और एक अन्य

स्थान में एक धर्मव्याध नामक कसाई मांस-विक्रय कर रहा है, और इन दोनों को ही अपने कर्तव्य का पूर्णतः पालन करने से पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो चुकी है।"

"अतः स्वामीजी, आपका इस देश की स्त्रियों के लिए क्या सन्देश है ?"

स्वामीजी--"मेरा तो इस देश की स्त्रियो के लिए वही सन्देश है, जो पुरुषों के लिए है। भारत मे और भारतीय धर्म में पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास रखो। तेजस्वी वनो, अपने गौरव-शाली भविष्य मे विश्वास रखो। अपने जीवन एवं धर्म की महत्ता पर अभिमान रखो, न कि लज्जा। और स्मरण रखो कि हिन्दू जाति को संसार के अन्य देशो से कुछ ग्रहण करना तो अवश्य है, परन्तु उसे संसार को जो देना है, वह लेने की अपेक्षा सहस्रगुना अधिक है।"

परिशिष्ट

भारतीय नारी

(पैसेडेना, कैलिफोर्निया के 'शेक्सपियर क्लब हाउस' में १८ जनवरी, १९००, को दिया हुआ भाषण।)

स्वामी विवेकानन्द--उपस्थित सज्जनों में से कुछ लोग व्याख्यान के पूर्व हिन्दुओं के दर्शनशास्त्र के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न पूछना चाहते हैं तथा व्याख्यान के पश्चात् भी भारतवर्ष के सम्बन्ध में साधारण रूप के प्रश्न करना चाहते हैं; किन्तु प्रधान कठिनाई यह है कि मैं यही नहीं जानता कि मुझे किस विषय पर व्याख्यान देना है। हिन्दुओं के दर्शनशास्त्र, अथवा उस जाति, उसके इतिहास या साहित्य से सम्बन्धित किसी भी विषय पर व्याख्यान देने में मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। यदि उपस्थित सज्जनों और महिलाओं में से कोई किसी विषय का निर्देश कर दे, तो विशेष अच्छा होगा।

प्रश्नकर्ता--स्वामीजी, मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि अमेरिका के निवासियों को, जो अत्यन्त व्यवहारनिपुण हैं, आप हिन्दू दर्शनशास्त्र के किस विशेष सिद्धान्त को अपनाने का आदेश देंगे, और ईसाई धर्म की अपेक्षा वह सिद्धान्त हमारा क्या विशेष उपकार करेगा?

स्वामी विवेकानन्द---यह निर्णय करना मेरे लिए बड़ा कठिन है, यह आप लोगों पर ही निर्भर है। यदि आपको किसी ऐसे आत्मसात् करने योग्य सिद्धान्त का पता लगे, जिसे आप समझे कि वह आप लोगों का कुछ उपकार करेगा, तो आप उसे ही अपनाइये। आपको स्मरण रखना चाहिए कि मैं कोई मिशनरी नही हूँ और न अपने मत में लोगो को खीचने के लिए ही घूम रहा हूँ। मेरा मत है कि इस प्रकार के सभी विचार अच्छे और महान् है। इसलिए सम्भव है, आपके कतिपय विचार कुछ भारतीयों के लिए उपयुक्त हों और हमारे कुछ विचार यहाँ के कुछ लोगों के लिए। अतएव इन सब विचारों का सारे संसार में प्रचार होना आवश्यक है।

प्रश्नकर्ता---हम लोग आपके दर्शनशास्त्र का फलाफल जानना चाहते है; क्या आपके धर्म और दर्शनशास्त्र ने आप लोगो की स्त्रियों को हमारे देश की स्त्रियो से आगे बढ़ा दिया है ?

स्वामी विवेकानन्द---आप स्वयं समझ सकते है कि यह एक जटिल प्रश्न है; मैं अपने यहाँ की स्त्रियों को जिस प्रकार चाहता हूँ, उसी प्रकार आपके यहाँ की स्त्रियो को भी।

प्रश्नकर्ता---क्या आप अपने यहाँ की स्त्रियो के रीति-रिवाज, उनकी शिक्षा और पारिवारिक जीवन मे उनके स्थान के सम्बन्ध मे कुछ बतलायेंगे ?

स्वामी विवेकानन्द---हाँ, बड़े आनन्द से। तो इस समय आप लोग भारतीय स्त्रियों के सम्बन्ध में कुछ जानना चाहते हैं; भारतीयों के दर्शनशास्त्र या अन्य बातों के सम्बन्ध में नहीं ?

इस विपय को आरम्भ करने के साथ ही मुझे यह वतला देना चाहिए कि मै ऐसे आश्रम का मनुष्य हूँ जिसमे कभी विवाह ही नहीं करते, इसलिए स्त्रियों का प्रत्येक दृष्टिकोण से-- माता, स्त्री, कन्या और वहिन रूप से--मेरा ज्ञान अन्य लोगो की तरह पूर्ण नही भी हो सकता। फिर मुझे यह भी न भूलना चाहिए कि भारतवर्ष एक महादेश है, केवल एक देश ही नही; और वहाँ विभिन्न मानववंश वास करते है। यूरोप के विभिन्न राष्ट्र भारतवर्ष के मानववशों की अपेक्षा एक दूसरे के अधिक निकट और अधिक समान है। इस वात की मोटे तौर पर धारणा आप इसी से कर सकते है कि सारे भारतवर्ष मे आठ विभिन्न भाषाएँ बोली जाती है। दस करोड़ मनुष्य हिन्दी बोलते हैं और लगभग छ. करोड़ लोग वगला, इसी प्रकार और भी समझ लीजिये। उत्तर भारतवर्ष की चार भाषाएँ दक्षिण की चार भाषाओ से इतनी भिन्न है कि यूरोपीय देशों की भाषाएँ आपस में उतनी भिन्नता नही रखती। उनमे इतना अन्तर है, जितना आपकी भाषा और जापानी भापा मे है। इसलिए आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि यदि हम दक्षिण भारत मे जायँ, तो जव तक हमे कोई ऐसे व्यक्ति न मिलें, जो सस्कृत जानते हो, तव तक हमे वहाँ के लोगों से अँगरेजी मे वाते करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त, इन विभिन्न मानववंशों के आचार, रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा और विचारों मे भी वहुत अन्तर है।

इसके वाद फिर जातियाँ हैं। प्रत्येक जाति मानो एक एक विभिन्न सम्प्रदाय हो गयी है। यदि कोई वहुत दिनों तक भारत-

वर्ष में रहे तो वह शक्ल देखकर बता सकता है कि अमुक व्यक्ति किस जाति का है। इन जातियों के भी आचार और रीति-रिवाजों में अन्तर है। ये सभी जातियाँ पृथक् रहती है, अर्थात् वे सामाजिक ढंग से आपस मे मिलती-जुलती अवश्य है, पर आपस मे खान-पान या विवाह नहीं करतीं। इन बातों मे वे अलग रहती हैं। वे आपस में मिलेंगी-जुलेंगी और उनमें मैत्री भी रहेगी, पर बस यहीं तक।

यद्यपि दूसरे लोगों की अपेक्षा मुझे एक धर्मप्रचारक के नाते, भारतीय स्त्रियों के बारे मे जानने का साधारणतः अधिक अवसर प्राप्त होता है, फिर भी मेरे लिए यह कहना कि मै भारतवर्ष की स्त्रियो के सम्बन्ध मे सब कुछ जानता हूँ, अतिशयोक्ति होगी। मेरी जानकारी का कारण यह है कि मैं बराबर एक स्थान से दूसरी जगह घूमा ही करता हूँ और समाज के हर श्रेणी के लोगों से मिलता-जुलता हूँ, यहाँ तक कि उत्तर भारत की स्त्रियों से भी जो, पुरुषों के सामने नही आती, पर जो कई स्थानों मे धर्म के लिए इस नियम को तोड़कर हमारे सामने आती है, हमारे उपदेश सुनती हैं और हमसे बातें करती हैं।

अतएव मैं आप लोगों के सामने भारतीय स्त्रियो के आदर्श को रखने का प्रयत्न करूँगा। प्रत्येक राष्ट्र में पुरुष या स्त्री किसी एक आदर्श को व्यक्त करती है, जिसकी पूर्ति ज्ञात या अज्ञात भाव से होती है। व्यक्तिविशेष अभिप्रेत आदर्श का बाह्य रूप मात्र है, ऐसे व्यक्तियों के समूह को राष्ट्र कहते हैं; और ऐसा राष्ट्र भी किसी महान् आदर्श की ओर लक्ष्य करता है, जिसकी ओर वह राष्ट्र अग्रसर हो रहा है। इसलिए यह कहना बिलकुल ठीक है कि किसी राष्ट्र को समझने के लिए पहले उसके

आदर्श को समझना आवश्यक है; कोई राष्ट्र अपना आदर्श छोड़कर किसी दूसरे आदर्श से जाँचा जाना पसन्द नही करता।

सभी उन्नति, प्रगति, भलाई या अवनति सापेक्ष होती है। वह किसी आदर्श की ओर निर्देश कर देती है, और प्रत्येक व्यक्ति की पूर्णता को समझने के लिए उसी आदर्श से उसे जाँचना होगा। ये बातें राष्ट्रविशेष में अधिक स्पष्ट होती हैं। जिसे एक राष्ट्र अच्छा समझता है, सम्भव है, उसे दूसरा अच्छा न समझे। चचेरे भाई-बहनों मे विवाह इस देश मे पूर्ण रूप से वैध है। किन्तु भारतवर्ष मे यह केवल गैर-कानूनी ही नहीं, वरन् व्यभिचार-सदृश एक बहुत बड़ा अपराध समझा जाता है। विधवा-विवाह यहाँ सर्वथा न्यायसंगत है, किन्तु भारतवर्ष की उच्च श्रेणी की स्त्रियों के लिए दूसरी बार विवाह करना उनका सब से बड़ा पतन है। अतः देखा आपने, विचारों की इतनी महान् विभिन्नता में रहनेवाले हम लोगों को एक के आदर्श से दूसरे को जाँचना न तो उचित है और न सम्भव ही। इसलिए हमे पहले जान लेना चाहिए कि किस राष्ट्र ने किस आदर्श को अपने समक्ष रखा है। विभिन्न राष्ट्रो के सम्बन्ध मे कुछ कहते समय, हम यह पहले से ही मान लेते है कि सभी जातियों के लिए एक ही आदर्श और एक ही आचार है। जब हम दूसरों का विचार करने लगते है, तब हम मान लेते है कि जो हमारे लिए अच्छा है, वह सब के लिए अच्छा होगा; जो हम करते है, ठीक करते है, और जो कुछ हम नहीं करते वह यदि दूसरे करते है, तो गलती करते हैं। इसे मैं आलोचना के ढंग से नही वरन् सच्ची बात बताने के लिए कहता हूँ। जब पाश्चात्य स्त्रियाँ चीनी स्त्रियों को पैर बाँध रखने के लिए दोषी ठहराने लगती है, तो वे भूल जाती हैं कि उसकी

अपेक्षा पाश्चात्य देश की अँगिया (Corset) उनकी जाति का कहीं अधिक अनुपकार कर रही है। यह तो केवल एक उदाहरण है। आप समझते है कि पैर की बाढ़ को रोकना मनुष्य की शक्ल की लक्षांश भी उतनी हानि नही करता, जितनी हानि उस अँगिया द्वारा हुई और हो रही है--उससे शरीर के अवयव विकृत हो जाते है और रीढ़ साँप की तरह टेढ़ी हो जाती है। जब नाप-जोख होती है, तो उस टेढेपन को आप अच्छी तरह देख सकते है। इसे मै आलोचना के लिए नही कह रहा हूँ, वरन् आपको परिस्थिति समझाने के लिए। आप लोग अपने को सब से श्रेष्ठ समझते हुए दूसरी जाति की स्त्रियो के प्रति आश्चर्य प्रकट करते है; उसी प्रकार वे भी आपके आचार-व्यवहार, रीति-नीति को ग्रहण नही करती, क्योकि वे भी आपको आश्चर्य रूप से देखती है।

अतएव दोनों ही ओर कुछ भ्रामक धारणाएँ हो गयी हैं। सभी के पीछे ज्ञान की एक सर्वसामान्य भूमि है, एक सर्वसामान्य मानवता है, और वही हमारे कार्यों का आधार होना चाहिए। हमे उस पूर्ण और समीचीन मानव-प्रकृति को ढूंढ निकालना चाहिए, जो केवल आंशिक रूप से इधर-उधर कार्य कर रही है। किसी व्यक्तिविशेष को प्रत्येक बात की पूर्णता नहीं दी गयी है। आपका एक कर्तव्य है; और मेरा, अपने विनम्र ढंग से, कुछ दूसरा; हर एक व्यक्ति अपना अपना अंश पूरा करता है। इन सब अंशों के एकीकरण से पूर्णता प्राप्त होती है। व्यक्तियो के लिए जो बात सत्य है, वही जातियों के लिए भी। प्रत्येक जाति का एक विशेष कर्तव्य है, उसे मानव-प्रकृति के एक अंश को उन्नत करना है; हमे इन सब को एकत्रित करना होगा। और

सम्भवत: सुदूर भविष्य मे विभिन्न जातियो की आश्चर्यजनक जातीय पूर्णताओं का समन्वय होकर एक ऐसी अद्‌भुत नयी जाति की उत्पत्ति होगी, जिसकी विश्व ने अभी तक कल्पना ही नही की है। यह कहने के अतिरिक्त मुझे किसी की कोई आलोचना नहीं करनी है। मैने अपने जीवन में कोई थोडा भ्रमण नहीं किया; मैने सदैव अपनी आँखे खुली रखी है; जितना ही अधिक मै विभिन्न देशो से परिचित होता हूँ उतनी ही मेरी बोली बन्द होती जाती है। मुझे कोई आलोचना नही करनी है।

* * *

मै उस आश्रम का हूँ, जो वहुत-कुछ आप लोगों के कैथलिक चर्च के पादरियो (Mendicant Friars of the Catholic Church) से मिलता-जुलता है; अर्थात् हमे विना वहुत-कुछ कपड़ा-लत्ता पहने इधर-उधर जाना पड़ता है; हम लोग दरवाजे दरवाजे भीख माँगते है और उसी से अपनी गुजर करते है; आवश्यकता पडने पर लोगो को उपदेश देते है; जहाँ भी स्थान मिल जाता है, वही सो रहते है। हमे इसी प्रकार जीवन निर्वाह करना पडता है। नियम यह है कि इस आश्रम के सभी लोग प्रत्येक स्त्री को 'माँ' कहकर पुकारे। प्रत्येक स्त्री को ही क्या, हमे तो छोटी लड़की को भी 'माँ' ही कहकर पुकारना पड़ता हैं; यही नियम है। पाश्चात्य देशो मे आने पर भी वही संस्कार वना रहा। जव मैं स्त्रियो से कहता "हाँ, माता !" तो वे आश्चर्यचकित हो जातीं! पहले तो मै नही समझ सका कि उनके इस प्रकार आश्चर्य प्रकट करने का क्या कारण है। वाद मे मुझे इसका कारण मालूम हुआ। उस कथन का अर्थ होता है कि वे वृद्धा है। भारतवर्ष में स्त्रीत्व मातृत्व का ही बोधक है,

मातृत्व में महानता, स्वार्थशून्यता, कष्ट-सहिष्णुता और क्षमाशीलता का भाव निहित है। पत्नी तो छाया की तरह पीछे चलती है, उसे माता के जीवन का अनुकरण करना पड़ता है, यही उसका कर्तव्य है। किन्तु माता प्रेम का आदर्श होती है। वह परिवार का शासन करती है और उस पर अधिकार रखती है। भारतवर्ष में यदि बालक कोई अपराध करता है, तो पिता ही उसे मारता-पीटता है। माता सदा पिता और बालक मे बीच-बचाव करती है। यहाँ पर ठीक उलटा है। इस देश में बच्चों को मारना-पीटना माताओं का कर्तव्य हो गया है और पिता बीच-बचाव करता है। आप समझ सकते हैं कि आदर्श की कितनी भिन्नता है। इसे मैं आलोचनात्मक ढंग से नहीं कहता। आप लोग जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं; पर हम लोगों को जो सदा से सिखाया गया है, हमें तो उसी का अभ्यास है। कोई भी माता कभी अपने बच्चों को अभिशाप नही देती, वह सदा क्षमा ही करती रहती है। 'हमारे स्वर्गस्थ पिता' के बदले मे हम सदा 'माता' का ही प्रयोग करते हैं। एक हिन्दू के लिए उस शब्द और उस भाव मे अनन्त प्रेम भरा है। इस विनश्वर संसार में ईश्वर का प्रेम पाने के लिए माता का प्रेम सब से निकटतम साधन है। "हे माता! दया करो, मैं तो कुपुत्र हूँ! माँ, कुपुत्र तो अनेक हुए हैं, किन्तु कुमाता कभी नही हुई।"—महान् साधु रामप्रसाद ने यही कहा है।

* * *

तो फिर भारतीय समाज का आधार क्या है? वह है जातीय नियम। मैं जाति के लिए पैदा हुआ हूँ, और जाति के लिए जीवित हूँ। यहाँ 'मैं' कहने से मेरा अभिप्राय मुझे स्वयं से

नही है, क्योंकि संन्यास आश्रम मे रहने के कारण मैं इस नियम के वाहर हूँ। मेरा अभिप्राय उन लोगो से है, जो समाज में रहते हैं। जाति में पैदा होने से सारा जीवन जाति के नियमानुसार विताना होगा। दूसरे शब्दो मे, आपके देश की वर्तमान भापा मे यह कहा जा सकता है कि पश्चिमी देशों का व्यक्ति अपने ही लिए पैदा होता है, और हिन्दू अपने समाज के लिए--हाँ, सम्पूर्ण रूप से समाज के लिए। अब, शास्त्रो का कहना है, यदि हम तुम्हे उस स्त्री से विवाह करने की आज्ञा देते है, जिसे तुम पसन्द करते हो, और स्त्री को उस पुरुप से विवाह करने की, जिसे वह पसन्द करती है, तो इसका परिणाम क्या होता है ? तुम्हे तो प्रेम हो जाता है, किन्तु यदि उस स्त्री का पिता मानसिक या क्षय-रोग से पीडित हो तव ? स्त्री उस पुरुष की शक्ल देखकर मुग्ध हो जाती है, जिसका पिता एक भयानक शरावी था। तव नियम क्या कहता है ? उसका कहना है कि ऐसी परिस्थिति मे ये सभी विवाह अनियमित माने जायेंगे। शरावी, पागल और क्षय-रोगी पुरुपो के वच्चों का विवाह नही किया जा सकेगा। लूले, लँगडे, कुवड़े और पागलो की सन्तान का विवाह नही हो सकेगा--नही, कभी नही; यही शास्त्रों की आज्ञा है।

मुसलमान लोग अरव से आते है और अरव का कानून अपने साथ ले आते है; इसलिए अरव की मरुभूमि का कानून हम लोगो पर लाद दिया जाता है। अँगरेज अपना कानून लेकर आते है और जहाँ तक सम्भव होता है, उसे हमारे ऊपर लादने की चेष्टा करते है। हम विजित है। वह कहता है कि मै तुम्हारी वहिन से कल विवाह करूँगा। ऐसी दशा मे हम भला क्या कर

सकते हैं ? हम लोगों के कानून का कहना है कि जो लोग एक ही वंश में उत्पन्न हुए हैं, चाहे उनका सम्बन्ध कितनी ही दूर का क्यों न हो, उन्हें आपस मे विवाह नहीं करना चाहिए, ऐसा विवाह गैर-कानूनी है; क्योकि इससे जाति क्षीण अथवा बाँझ हो जायगी। जाति को ऐसी नहीं होने देना चाहिए। अतएव अपने विवाह मे न तो मुझे कुछ बोलने का अधिकार है और न मेरी बहिन को ही। जाति ही इन बातों का निर्णय करती है। हमारा विवाह कभी कभी बाल्यावस्था में ही हो जाता है। क्यों ? जाति का कहना है कि यदि बिना उनकी इच्छा के ही उन लोगों का विवाह करना है, तो बाल्यकाल में ही उनका विवाह हो जाना चाहिए, जब उन्हें किसी से प्रेम न हुआ हो। यदि वे लोग बड़े हो जायेंगे, तो बालक किसी दूसरी बालिका को पसन्द करेगा, और बालिका किसी दूसरे बालक से प्रेम कर सकती है। इससे कुछ न कुछ बुराई हो सकती है। इसलिए जाति का कहना है कि इसे यही रोक दो। मैं इस बात की चिन्ता नही करता कि मेरी वहिन लूली-लँगड़ी है, देखने मे सुन्दर है या कुरूप; वह मेरी बहिन है, बस इतना ही पर्याप्त है। वह मेरा भाई है, बस मुझे इतनी ही जानकारी चाहिए। अतः वे परस्पर प्रेम करेंगे। आप कह सकते है कि "इस प्रकार तो उनका बहुत-कुछ मजा जाता रहता है—किसी पुरुष का किसी स्त्री के और किसी स्त्री का किसी पुरुष के प्रेमपाश में आबद्ध होने की वह उत्कृष्ट प्रेमतरंग ! इस प्रेम मे तो कोई रस नहीं—भाई-बहिन की तरह एक दूसरे को प्यार करना मानो उनका कर्तव्य है।" यह चाहे जो हो, पर हिन्दू का कहना है कि हम लोग समाजबद्ध है। किसी एक पुरुष या स्त्री के सुख के

उन्माद के लिए हम दूसरे सैकड़ों लोगों पर यह दुःख-कष्ट का बोझ नही लादना चाहते ।

उनका विवाह होता है । स्त्री अपने पति के साथ घर आती है । इसे 'गौना' कहते हैं । छोटी उम्र का विवाह पहला विवाह समझा जाता है, वे अलग अलग अपने परिवार और माता-पिता के साथ बड़े होते हैं । जब वे बड़े हो जाते हैं, तो एक दूसरा धार्मिक कृत्य होता है, जिसे 'गौना' कहते हैं । तब से वे साथ रहते है, पर पति के माता-पिता के साथ एक ही मकान मे । जब वधू माता हो जाती है, तब वह भी अपने समय में घर की मालकिन बन जाती है ।

इसके बाद दूसरा विचित्र भारतीय नियम आता है । मै पहले आप लोगो को बता चुका हूँ कि पहली दो या तीन जातियों की विधवाओं को पुनर्विवाह करने की आज्ञा नही है । यदि उनकी इच्छा भी हो, तो भी वे ऐसा नही कर सकती । अवश्य यह बहुतों पर अत्याचार-जैसा है । सभी विधवाएँ इस नियम को पसन्द करती हो, ऐसा तो नही कहा जा सकता; क्योकि विवाह न करने से ब्रह्मचारिणियो की भाँति जीवन बिताना उनके लिए आवश्यक हो जाता है । ब्रह्मचारिणी को मछली मास नही खाना चाहिए, शराब नही पीनी चाहिए, रंगीन कपडे नही पहिनना चाहिए । इसी प्रकार के और भी बहुतसे नियम है । हमारा साधुओ का देश है, जो सदा तपस्या करते है, और यह हमे पसन्द भी है । अत. आपने देखा, एक स्त्री न तो शराब पीना पसन्द करती है और न मास खाना । जब हम लोग विद्यार्थी थे, तो हम लोगों को यह एक जुल्म-सा मालूम पड़ता था, पर लड़कियों को नही । हमारी स्त्रियाँ मांस खाने की बात से

नीचता का बोध करती हैं। कुछ जातियों के पुरुष कभी कभी मांस खा भी लेते हैं, किन्तु स्त्रियाँ नहीं। फिर भी पुनर्विवाह की आज्ञा न पाना अनेक स्त्रियों के लिए जुल्म हो सकता है। मुझे इसका विश्वास है।

किन्तु हमें इससे मूलतत्त्व की ओर ध्यान देना चाहिए। वे विशेष रूप से 'सामाजिक नियमवद्ध' हैं। प्रत्येक देश के उच्च वर्णों में, जैसा आँकड़ों से पता चलता है, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक होती है। क्यों? इसलिए कि उच्च वर्णो मे स्त्रियाँ पीढी दर पीढ़ी सुख से जीवन व्यतीत करती है। उन्हें कुछ काम-धाम नही करना पडता, और शान-शौकत में तो सालोमन* को भी उनके सामने लज्जित होना पड़ता है! उनकी तो मानो बिल्लियों की तरह नौ जिन्दगियाँ है--जैसा भारत मे कहा जाता है। और बेचारे लड़के? --वे तो मक्खियों की मौत मरते हैं। हमे आँकड़ों से पता लगता है कि लडकियाँ बहुत थोडे समय में लड़कों से संख्या मे आगे बढ जाती है। आज भले ही वैसा न हो, क्योंकि आजकल वे भी लड़को की भाँति कठिन से कठिन काम कर रही है। उच्च वर्णो मे लडकियों की संख्या निम्न वर्णो की अपेक्षा बहुत अधिक है। निम्न वर्णो की परिस्थिति बिलकुल भिन्न है। वे सभी कठिन परिश्रम करते है, स्त्रियो को तो और भी कठिन परिश्रम करना पड़ता है, क्योंकि उन्हें घर के सब काम-काज भी करने पड़ते है। स्मरण रहे, मै इस बात पर कभी ध्यान न देता, पर एक अमेरिकन यात्री मार्क ट्वेन भारत के सम्बन्ध में लिखते है--"पाश्चात्यदेशीय आलोचको ने हिन्दुओ के रीति-रिवाज के

---

* Solomon--एक राजा का नाम।

सम्बन्ध में चाहे जो कहा हो, किन्तु मैने भारतवर्ष में कभी किसी स्त्री को बैल के साथ हल मे जोते जाते या कुत्ते के साथ गाडी खीचते नही देखा, जैसा यूरोप के कुछ देशो मे होता है। मैने भारतवर्ष के खेतो मे स्त्रियो को काम करते नही देखा। रेल मे से देखने पर दोनो ओर साँवले, बिना कपडा पहने मनुष्य और लडके खेतों मे काम करते दिखायी पडते है, किन्तु एक भी स्त्री दिखायी नही पडती। मैने दो घण्टे मे एक स्त्री को भी खेत मे काम करते नही देखा। भारत में सब से निम्न जाति की स्त्रियाँ भी कोई कठिन काम नही करती। दूसरे देश की उसी परिस्थिति-वाली स्त्रियो की अपेक्षा उन्हे कम काम करना पडता है। और खेत तो वे कभी जोतती ही नही।" फिर भी उच्च वर्ण की स्त्रियो की तुलना मे उनका जीवन कठोर होता है। अब समझा आपने! पूर्वोक्त कारण से भारत मे, नीच जातियों मे, स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो की सख्या बहुत अधिक है। अतएव आप स्वाभाविक रूप से क्या अनुमान करेगे? यही कि मनुष्यो की सख्या अधिक होने के कारण स्त्रियो को विवाह करने के अधिक अवसर मिलते है।

विधवाओ के विवाह न करने का जो प्रश्न है, उसके सम्बन्ध मे कहना है—प्रथम दो वर्णो मे स्त्रियों की संख्या पुरुषों की सख्या से बहुत अधिक है, इससे एक दुविधा उत्पन्न हो गयी है। या तो विवाह न करनेवाली विधवाओ की समस्या है अथवा नवयुवतियो को पति मिलने के अभाव का प्रश्न है—विधवाओं की समस्या या वयस्क कुमारियो की समस्या! इन्ही दोनो मे से किसी एक पर विचार करना होगा। अब पुन: इस बात को स्मरण कीजिये कि भारतीयो का मन समाजप्रिय है। उनका कहना है कि हम विधवाओ की समस्या को इतना

महत्त्व नहीं देते। क्यों ? "इसलिए कि उन्हें अवसर दिया गया था, उनका विवाह कर दिया गया था। यदि उनका अवसर खो गया फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि उन्हे एक अवसर तो मिला ही था। अतः बैठ जाइये, चुप होकर जरा इन बेचारी गरीब लड़कियों के बारे में विचार कीजिये जिन्हें विवाह करने का एक भी अवसर न मिला।" मुझे स्मरण है, एक वार आक्सफर्ड स्ट्रीट में, कोई दस बजे के वाद, जितनी स्त्रियाँ वहाँ आ रही थी, उनमे हजारों बाजार कर रही थीं। उन्हे देखकर एक अमेरिकन पुरुष ने कहा, "हा ईश्वर! इनमे से कितने को पति मिलेंगे, इसका मुझे आश्चर्य है!" अतएव भारतीय मनीषियों ने विधवाओं के प्रति कहा, "तुम्हे तो अवसर दिया गया था, अब हमें इसका बहुत ही अधिक दुःख है कि तुम्हारे ऊपर यह भयंकर वज्रपात हुआ, पर हम अब कुछ नही कर सकते; क्योंकि दूसरी कुमारियाँ प्रतीक्षा कर रही है।"

अव देखें धर्म इस पर क्या कहता है। धर्म सान्त्वना लेकर आता है। आप एक बात स्मरण रखे, हमारा धर्म शिक्षा देता है कि विवाह बुरी चीज है और वह कमजोरो के लिए है। यथार्थ धार्मिक स्त्री या पुरुप तो कभी विवाह ही नही करेगा। धार्मिक स्त्री कहती है, "परमात्मा ने मुझे अधिक अच्छा अवसर दिया है। अतः मुझे अब विवाह करने की क्या जरूरत ? मैं बस ईश्वर की पूजा-अर्चना करूँ, किसी पुरुप से प्रेम करने की क्या जरूरत ?" अवश्य उनमें से सभी ईश्वर पर ध्यान नही लगा सकतीं। कुछ के लिए तो यह सर्वथा असम्भव हो जाता है और इसलिए उन्हें कष्ट होता है। किन्तु दूसरी बेचारियो को—कुमारियों को तो उनके लिए कष्ट नही होना चाहिए। यही

भारतीयों का भाव है। पर इसका निर्णय मैं आप लोगों के ऊपर छोड़े देता हूँ।

इसके बाद हम स्त्री को एक पुत्री के रूप मे लेगे। भारतीय घरों में कन्या एक समस्या है। कन्या और जातिविभाग मिलकर बेचारे हिन्दू को पीस डालते है; क्योंकि कन्या का विवाह अपनी ही जाति मे या यो कहिये, अपनी ही जाति के अन्तर्गत एक ही उपजाति में होना चाहिए। और इसीलिए लड़की का विवाह करने के लिए कभी कभी तो पिता को भिखारी बन जाना पड़ता है। वर का पिता अपने पुत्र के लिए बहुत अधिक मूल्य माँगता है। इसलिए कन्या के पिता को कभी कभी अपना सब कुछ बेचकर अपनी कन्या का विवाह करना पडता है। यही कारण है कि कन्या हिन्दू जीवन की एक बडी समस्या है। आश्चर्य की बात तो यह है कि संस्कृत मे कन्या को 'दुहिता' कहते है। इस शब्द की मूल उत्पत्ति इस प्रकार है कि प्राचीन काल मे कन्याएँ ही गाये दुहा करती थी इसलिए ' दुहना ' क्रिया से ' दुहिता ' संज्ञा बन गयी। अतएव दूध दुहनेवाली को 'दुहिता' कहते हैं। इसके पश्चात् इन लोगो ने 'दुहिता' का नवीन अर्थ लगाया,— जो घर का सारा दूध दुह ले जाती है, उसे दुहिता कहते है। यही दुहिता का दूसरा अर्थ है।

समाज मे भारतीय स्त्रियों के ये ही विभिन्न सम्बन्ध है जैसा मैंने आप लोगो से बताया है, माता का स्थान सब से उच्च है, दूसरा स्थान पत्नी का है, उसके बाद कन्या का स्थान आता है। समाज का यह सब श्रेणीक्रम बहुत ही दुर्बोध्य और पेचीदा है। इसे कोई विदेशीय समझ ही नहीं सकता, चाहे वह वर्षो यहाँ रहे। उदाहरणार्थ, हमारे यहाँ सम्बोधनवाचक सर्वनाम के

तीन रूप होते है। इनमे से एक (आप) सब से अधिक सम्मान-सूचक है, दूसरा (तुम) मध्यम श्रेणी का और सब से नीच श्रेणी का (तू और तेरा) आप लोगों के Thou और Thee की तरह का है। वच्चों और नौकरों के लिए तीसरे का प्रयोग होता है और वरावरीवालों के लिए मध्यम का। इन सब का प्रयोग जीवन के सभी जटिल सम्वन्धों मे करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, मैंने अपने सारे जीवन मे अपनी वड़ी वहिन के लिए 'आप' का प्रयोग किया है, किन्तु वह मेरे लिए 'आप' का प्रयोग नही करती, वह मुझे 'तुम' कहती है। उसे भूलकर भी मेरे लिए 'आप' का प्रयोग नही करना चाहिए क्योंकि उससे मेरा अकल्याण होगा। वडों के प्रति प्रेम का प्रकाश उसी प्रकार की भापा में होना चाहिए। यही रिवाज है। इसी प्रकार मैं भी, माता-पिता तो क्या, वड़े भाई और वहिन के लिए भी 'तू' या तुम का प्रयोग नही कर सकता। अपने माता-पिता का नाम लेकर तो हम लोग कभी पुकार ही नही सकते। इस देश का रीति-रिवाज जानने के पूर्व, एक वार जव एक अत्यन्त सुसंस्कृत परिवार के लड़के ने अपनी माता का नाम लेकर पुकारा, तो मेरे हृदय पर वड़ा धक्का लगा। फिर मुझे इसका अभ्यास हो गया। यह इस देश का रिवाज है। किन्तु हम लोग अपने माता पिता का नाम उनके सामने नही ले सकते।

अब आप समझ सकते है कि हमारे स्त्री-पुरुपों का सामाजिक जीवन और सम्बन्ध का तारतम्य किस प्रकार जाल के समान जटिल है। हम अपने वड़ों के सामने अपनी स्त्री से वात नही कर सकते; केवल अपने से छोटों के सामने या अकेले मे ही हम उससे वातें कर सकते हैं। यदि मेरा विवाह हुआ होता,

तो मैं अपनी पत्नी से अपने छोटे भाई, भतीजे और भानजी के सामने वात कर सकता, किन्तु अपनी वड़ी वहिन, माता और पिता के सामने नही। मैं अपनी वहिनों से उनके पति के सम्वन्ध मे कोई वात नही कर सकता। वात यह है कि हिन्दू धर्म के अनुसार समाजसस्था का अन्तिम आदर्श संन्यास ही है। इस सर्वोच्च एवं पवित्रतम आदर्श की तुलना में विवाह एक निम्न कोटि की चीज है, यद्यपि आपेक्षिक दृष्टि से सर्वोच्च आदर्श की ओर ले जानेवाला वह एक सोपानस्वरूप है। इसलिए कुटुम्व मे दाम्पत्य प्रेम सम्वन्धी वाते करना निषिद्ध माना गया। मैं अपनी वहिन, अपने भाई, अपनी माता या दूसरों के सामने एक उपन्यास नही पढ़ सकता, मुझे पुस्तक वन्द कर देनी पडती है।

खाने-पीने के सम्वन्ध में भी यही वात है। हम लोग वड़ों के सामने नही खा सकते। हमारी स्त्रियाँ तो पुरुषो के सामने कभी भोजन नही करती। हाँ अपने से छोटों या वच्चों के सामने खा सकती है। स्त्री भूखी रहना पसन्द करेगी, पर अपने पति के सामने कभी भोजन नही करेगी। कभी कभी भाई और वहिन एक साथ खा सकते हैं। यदि मैं और मेरी वहिन खाते हों, और उसका पति दरवाजे पर आ जाय, तो वह खाना वन्द कर देगी, और पति वेचारा भाग जायगा।

हमारे देश के ये सव विचित्र रीति-रिवाज हैं। इनमे से कुछ तो मैंने दूसरे देशो मे भी पाये है। अपना विवाह न करने के कारण पत्नी सम्वन्धी मेरा ज्ञान अपर्याप्त है, पर माता और वहिनों के सम्वन्ध मे मैं भलीभाँति जानता हूँ। दूसरे लोगो की स्त्रियों को देखकर ही मैने आप लोगों को पत्नी के सम्वन्ध मे ये सव वाते वतायी है।

शिक्षा और संस्कृति यह सब पुरुषों पर अवलम्बित है। अर्थात् जहाँ के पुरुष शिक्षित और सुसंस्कृत हैं, वहाँ कि स्त्रियाँ भी शिक्षित और सभ्य हैं; जहाँ पुरुष सभ्य और शिक्षित नही, वहाँ स्त्रियाँ भी वैसी ही हैं। आप लोग जानते है कि पुराने जमाने से, हिन्दुओं के प्राचीन रीति-रिवाज के अनुसार, प्राथमिक शिक्षा ग्राम-पंचायत के अधीन है। अति प्राचीन काल से सारी जमीन राष्ट्र या राजा की समझी जाती है। जमीन पर व्यक्ति-विशेष का कोई अधिकार नही होता। भारत मे सारा राजस्व जमीन के लगान से ही आता है; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सरकार से ही जमीन पाता है। यह जमीन पाँच, दस, बीस या सौ परिवारों की साधारण सम्पत्ति के रूप से रहती है। वे ही जमीन की सारी व्यवस्था करते है, सरकार को मालगुजारी देते हैं, बीमारों की चिकित्सा के लिए एक वैद्य और बालक-बालिकाओं की शिक्षा के लिए एक शिक्षक का प्रबन्ध करते है, आदि आदि।

आप लोगों में से जिन्होंने हर्बर्ट स्पेन्सर की किताबें पढ़ी हैं, उन्हें उनके द्वारा लिखित शिक्षा की 'मठ-प्रथा' (Monastery System) के सम्बन्ध मे स्मरण होगा, जिसका युरोप में प्रचार किया गया और जो कुछ भागों मे सफल भी हुई। इस प्रथा के अनुसार गाँववाले एक शिक्षक को रखते हैं। ये प्राथमिक पाठशालाएँ नितान्त प्रारम्भिक होती हैं, क्योंकि हमारी प्रणाली बहुत सरल है। प्रत्येक लड़का एक छोटासा आसन लाता है और लिखने के लिए उसका पहला कागज होता है ताड़ का पत्ता। पहले ताड़ के पत्ते पर इसलिए लिखता है कि कागज महँगा पड़ता है। अपना आसन बिछाकर प्रत्येक लड़का बैठ जाता है और अपनी दवात और किताबे निकालकर

लिखना आरम्भ कर देता है। थोड़ा अंकगणित, थोड़ा संस्कृत व्याकरण, थोड़ी भाषा और थोड़ा वहीखाता, वस इतना ही प्राइमरी स्कूल मे पढाया जाता है।

एक वयोवृद्ध अध्यापक द्वारा पढायी गयी एक सदाचार की पुस्तक में से हमे एक पाठ कण्ठस्थ कराया गया था, जो मुझे आज तक स्मरण है--

'गाँव की भलाई के लिए मनुष्य अपने कुल को छोड़ दे।
देश की भलाई के लिए मनुष्य अपने गाँव को छोड़ दे।
मानवसमाज की भलाई के लिए मनुष्य अपने देश को छोड़ दे।
विश्व की भलाई के लिए मनुष्य अपना सर्वस्व छोड़ दे।'

पुस्तक में इसी प्रकार के भाव व्यक्त करनेवाले पद्य हैं। इसे हम लोक कण्ठस्थ करते है और अध्यापक इसे विद्यार्थियो को समझा देते हैं। इन वातो को वालक और वालिकाएँ एक साथ ही सीखते हैं। इसके वाद शिक्षा मे अन्तर पड़ जाता है। पुराने संस्कृत विश्वविद्यालयों मे केवल वालक ही पढते थे। वालिकाएँ विश्वविद्यालयों में पढने के लिए वहुत कम जाती थी; पर इसमे कुछ अपवाद तो अवश्य है।

आजकल यूरोपीय ढग पर उच्च शिक्षा देने की ओर लोगो का विशेष ध्यान है। स्त्रियों को भी उच्च शिक्षा देने के पक्ष मे अधिक लोगो की सम्मति है। हाँ, भारत में कुछ ऐसे भी लोग है, जो यह पसन्द नहीं करते; पर प्रवल सम्मति स्त्रीशिक्षा के पक्षपातियों की ही है। यह आश्चर्य की वात है कि आक्सफर्ड और केम्ब्रिज विश्वविद्यालयों के दरवाजे स्त्रियो के लिए आज वन्द है। यही हालत हार्वर्ड और येल के विश्वविद्यालयो

जानता है ? सम्भवतः वे ध्वंस का एक विराट् स्तूपमात्र रह गये हों।

"नलिनीदलगतजलमतितरलम्
तद्वज्जीवनमतिशयचपलम् ।"

—'कमल के पत्ते पर पड़ी हुई पानी की बूंद इतस्ततः डोलती हुई एक क्षण में जैसे गिर जाती है, बस वही हाल इस मृत्युशील जीवन का भी है।' जिस ओर हम घूमते हैं, नाश ही दिखायी पड़ता है। जहाँ आज जंगल है, वहाँ किसी जमाने में अनेक नगरों से पूर्ण कोई साम्राज्य रहा होगा। भारतीयों के प्रधान भाव, विचार आदि इसी प्रकार के होते हैं। हम जानते हैं कि आप पाश्चात्यों की नसों मे नौजवानी का खून दौड़ रहा है। हम जानते हैं कि मनुष्यों की भाँति राष्ट्रों का भी समय होता है। इस समय यूनान कहाँ ? रोमन कहाँ ? कल के शक्तिशाली स्पेन-वाले आज कहाँ ? इन सब को देखते हुए, कौन जानता है भारत का क्या होगा ? इस प्रकार राष्ट्र जन्म लेते हैं और मर जाते हैं; ऊपर उठते हैं और फिर नीचे गिर पड़ते हैं। हिन्दू बचपन से ही उस आक्रमणकारी मुगल से परिचित है, जिसकी सेना को पृथ्वी की कोई शक्ति नहीं रोक सकी और जिसने आपकी भाषा में भयंकर 'Tartar' (तातार) शब्द का निर्माण किया। हिन्दुओं ने अपना पाठ पढ़ लिया है। वे आजकल के बच्चों की तरह बकना नहीं चाहते। पश्चिमदेशीय लोगो ! तुम्हारी जो इच्छा हो, कह डालो—अभी यह तुम लोगों का समय है। आओ बच्चो ! जो कुछ बकना हो, बक डालो। आजकल का समय तो बच्चों के बकने का है। हमने यथेष्ट अभिज्ञता प्राप्त कर ली है और इसीलिए हम चुप हैं। आज तुम लोगों के पास

कुछ धन है, और इसीलिए तुम लोग हमारी ओर तिरस्कार की दृष्टि से देखते हो। अच्छा, यह तुम्हारा समय है, बच्चो! जितना बकना हो, बक लो—यही हिन्दुओं का मनोभाव है।

" नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।

o o o

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।

नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥"

—भगवान लम्बी-चौड़ी बातों द्वारा नही मिलते। बौद्धिक शक्ति द्वारा भी वे नही मिलते। विजेता की अतुल शक्ति द्वारा भी वे नहीं प्राप्त होते। पर जो व्यक्ति विश्व के मूल रहस्य को जानता है और यह समझता है कि उन परमात्मा के अतिरिक्त अन्य सभी कुछ नाशवान है, केवल उसी के पास परमात्मा प्रकट होते हैं, दूसरों के पास नही। भारत ने कई युगो की अनुभूति से अपना पाठ सीखा है। उसने परमात्मा की ओर अपनी दृष्टि फेरी है। अवश्य उसने बहुतसी गलतियाँ की हैं, कूड़ों का ढेर उस जाति पर लदा है। पर कोई बात नही, उससे क्या? कूड़ा-कर्कट और नगरों को साफ करने से भला क्या मिलेगा? क्या इससे जीवन मिलता है? जिन जातियों मे अच्छी अच्छी संस्थाएँ हैं, वे भी तो मर जाती है। फिर पाँच दिनों मे बननेवाली और छठे दिन टूट जानेवाली इन दिखावटी पश्चिमी सस्थाओ की भला क्या बिसात! इन मुट्ठी भर राष्ट्रों मे से एक भी तो दो शताब्दियों तक जीवित नही रह सकता। किन्तु हमारी जाति की प्रथाओं को देखो, किस तरह वे युगो के घात-प्रतिघात के बीच भी आज तक टिकी हुई है। हिन्दुओं का कहना है—" हाँ, हमने पृथ्वी के समस्त पुराने राष्ट्रों को भी दफना दिया है और

सभी नये राष्ट्रों को भी दफना देने के लिए यहाँ खड़े है; क्योंकि हमारा आदर्श यह जगत् नहीं वरन् जगत् के अतीत है। जैसा आपका आदर्श है, आप वैसे ही हो जायँगे। यदि आपका आदर्श अनित्य है, पार्थिव है, तो आप वैसे ही हो जायँगे। यदि आपका आदर्श जड़ है, तो आप भी जड़ ही हो जायँगे। स्मरण रहे, हमारा आदर्श है परमात्मा। एकमात्र वे ही अविनाशी है—अन्य किसी का अस्तित्व नही है, और उन परमात्मा की भाँति हम भी सदा विनाशहीन हैं।"

हमारे हिन्दी प्रकाशन

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग (भगवान् श्रीरामकृष्णदेव का सुविस्तृत जीवनचरित)–तीन खण्डों में, भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग शिष्य स्वामी सारदानन्दजी द्वारा मूल बंगला में लिखित प्रामाणिक, सुविस्तृत जीवनी का हिन्दी अनुवाद। डबल डिमाई आकार; आर्टपेपर के नयनाभिराम जैकेटसहित।

प्रथम खंड– ('पूर्ववृत्तान्त तथा बाल्यजीवन एवं 'साधकभाव')– १८ चित्रों से सुशोभित, पृष्ठसंख्या ४७६।

द्वितीय खंड–('गुरुभाव–पूर्वार्ध' एवं 'गुरुभाव–उत्तरार्ध')— चित्रसंख्या ७, पृष्ठसंख्या ५१०।

तृतीय खंड–('श्रीरामकृष्णदेव का दिव्यभाव और नरेन्द्रनाथ')— चित्रसंख्या ७, पृष्ठसंख्या २९६।

'ईश्वरावतार एक दैवी विभूति की जीवनी, जो लाखों करोड़ों लोगों का उपास्य हो स्वयं उन्हीं के किसी शिष्य द्वारा इस ढंग से शायद कहीं भी लिखी नहीं गयी है। पाठकों को इस ग्रन्थ में एक विशेषता यह भी प्रतीत होगी कि ओजपूर्ण तथा हृदयग्राही होने के साथ ही इसकी शैली आधुनिक तथा इसका सम्पूर्ण कलेवर वैज्ञानिक रूप से संजोया गया है।

"प्रस्तुत पुस्तक विश्व के नवीनतम ईश्वरावतार भगवान् श्रीरामकृष्णदेव की केवल जीवनआख्यायिका ही नहीं वरन् इस दिव्य जीवन के आलोक में किया हुआ संसार के विभिन्न धर्मसम्प्रदायों तथा मतमतान्तरों का एक अध्ययन भी है।"

श्रीरामकृष्णलीलामृत–(भगवान् श्रीरामकृष्णदेव का जीवनचरित)–दो भागों में; पं. द्वारकानाथ तिवारीकृत, महात्मा गाधी द्वारा लिखी हुई भूमिकासहित; आकर्षक जैकेटसहित।

प्रथम भाग, पृष्ठसंख्या ४००+१५, द्वितीय भाग, पृष्ठसंख्या, ४५४।

श्रीरामकृष्णवचनामृत–तीन भागों में, 'म' कृत, ससार की प्राय सभी प्रमुख भाषाओं मे प्रकाशित, अनुवादक—पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सचित्र, सजिल्द, नयनाभिराम जैकेटसहित। प्रथम भाग पृ. सं. ५८३+१२, द्वितीय भाग पृ. सं ६३२ तृतीय भाग पृ. सं ७२०।

माँ सारदा–(भगवान् श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी का विस्तृत जीवन-चरित) स्व. अपूर्वानन्दकृत, सजिल्द, आकर्षक जैकेटसहित, ८ चित्रों से सुशोभित, पृष्ठसंख्या ४५१+७।

श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ—(भगवान् श्रीरामकृष्णदेव एवं श्रीमा सारदादेवी की एकत्ररूप मे अत्यन्त आकर्षक ढंग से लिखी हुई जीवनी) स्वामी अपूर्वानन्दकृत, सचित्र, आर्ट पेपर के आकर्षक जैकेटसहित, पृष्ठसंख्या २७७।

विवेकानन्द-चरित—(हिन्दी मे स्वामी विवेकानन्दजी की एकमात्र प्रामाणिक विस्तृत जीवनी)—सुविख्यात लेखक श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार-कृत, सजिल्द, सचित्र, आर्ट पेपर के आकर्षक जैकेटसहित, पृष्ठसंख्या ५६५।

धर्म-प्रसंग में स्वामी शिवानन्द—स्वामी अपूर्वानन्द द्वारा सकलित

शिवानन्द-स्मृतिसंग्रह—संकलक स्वामी अपूर्वानन्द (तीन भागों में सम्पूर्ण)

श्रीरामकृष्ण–भक्तमालिका–स्वामी गम्भीरानंद (दो भागों में)

परमार्थ प्रसंग—स्वामी विरजानन्दकृत

सत्कार्य संकर— स्वामी अपूर्वानन्दकृत

स्वामी विवेकानन्दकृत पुस्तकें

भारत में विवेकानन्द (भारतीय व्याख्यान)
विवेकानन्दजी–राष्ट्र को आह्वान
विवेकानन्दजी के संग में

राजयोग–(पातंजल योगसूत्र और व्याख्यासहित)
ज्ञानयोग
भक्तियोग
कर्मयोग
प्रेमयोग
सरल राजयोग
पत्रावली (प्र. भा.)
पत्रावली (द्वि. भा)
देववाणी
भगवान बुद्ध का संसार को सन्देश एवं अन्य व्याख्यान
धर्मतत्त्व
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ
धर्मविज्ञान
वेदान्त
धर्मरहस्य
आत्मतत्त्व
विवेकानन्दजी की कथाएँ
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग
हिन्दू धर्म
कवितावली
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त

परिव्राजक (मेरी भ्रमण कहानी)
स्वाधीन भारत ! जय हो !
प्राच्य और पाश्चात्य
सार्वलौकिक नीति तथा सदाचार
भगवान रामकृष्ण–धर्म तथा संघ
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में
भारत का ऐतिहासिक क्रमविकास एवं अन्य प्रबन्ध
भारतीय नारी
चिन्तनीय बातें
जाति, संस्कृति और समाजवाद
विविध प्रसंग
मेरे गुरुदेव
नारद-भक्तिसूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान
ज्ञानयोग पर प्रवचन
शिक्षा
हिन्दू धर्म के पक्ष में
हमारा भारत
शिकागो वक्तृता
पवहारी बाबा
वर्तमान भारत
मरणोत्तर जीवन

मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की साधनाएँ
ईशदूत ईसा
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता
नया भारत गढ़ो
साधु नागमहाशय---(भगवान श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग गृही शिष्य)
गीतातत्त्व---स्वामी सारदानन्द
भारत में शक्तिपूजा---स्वामी सारदानन्द
वेदान्त---सिद्धान्त और व्यवहार---स्वामी सारदानन्द

पाकेट-साइज पुस्तकें

सूक्तियाँ एवं सुभाषित-
शक्तिदायी विचार
मेरी समरनीति
विवेकानन्दजी के उद्गार
मेरा जीवन तथा ध्येय
श्रीरामकृष्ण-उपदेश---स्वामी ब्रह्मानन्द द्वारा संकलित
रामकृष्ण संघ : आदर्श और इतिहास---स्वामी तेजसानन्द

विवेकानन्द संचयन

स्वामी विवेकानन्द की वृहत् साहित्यसामग्री में से चुने हुए विशिष्ट व्याख्यान, लेख, पत्र, सम्भाषण और कविताएँ इत्यादि का प्रतिनिधि संचयन। इस संचयन द्वारा स्वामीजी के दैवी व्यक्तित्व एवं बहुमुखी प्रतिभा की पर्याप्त झलक मिल सकेगी और साथ ही साथ अनेकानेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर उनके विचार भी जाने जा सकेंगे। डबल डिमाई १६ पेजी आकार; सचित्र, सजिल्द, आकर्षक जैकेट-सहित, पृष्ठसंख्या ५५३।

विस्तृत जानकारी के लिए निम्नलिखित पते पर पत्र लिखिए –

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर-४४००१२

भारतीय नारी

स्वामी विवेकानन्द

(एकादश संस्करण)



रामकृष्ण मठ
नागपुर